मास्टर ऑफ सोशल वर्क
(M.S.W.)
प्रथम वर्ष

विकास का अर्थशास्त्र
(Economy of Development)
(षष्ठ प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट (सतना) म.प्र. - ४८५३३४

विकास एवं अर्थशास्त्र
(Economy of Development)

ई–संस्करण 2023–24 / M.S.W. –I - 06

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :
प्रो. भरत मिश्र
कुलपति
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

पाठ्यक्रम निर्माण

डॉ. संजय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणासी

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. अजय आर. चौरे,

पाठ्यक्रम अभिकल्पना एवं सम्पादक मण्डल :

डॉ. कमलेश थापक डॉ. विनोद शंकर सिंह

डॉ. नीलम चौरे डॉ. राजेश त्रिपाठी

मुद्रण प्रस्तुति

डॉ. सन्तोष अरसिया, उपकुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

सन्तोष राजपूत, सहायक कुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

शिवांगी त्रिपाठी

सम्पर्क सूत्र :
डॉ. कमलेश थापक, निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

दूरभाष– 07670–265460, E-mail – directordistancemgcgv@gmail.com, website : www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

प्राक्कथन...

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की तपोस्थली, मंदाकिनी नदी के सुरम्य तट पर स्थापित महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय भारतरत्न नानाजी देशमुख के शैक्षिक चिंतन और संकल्पों की जीवंत अभिव्यक्ति है, जो म.प्र.शासन द्वारा 12 फरवरी, 1991 को विशेष अधिनियम 09, 1991 द्वारा स्थापित हुआ।

विश्वविद्यालय का ध्येय वाक्य है–'विश्वं ग्रामे प्रतिष्ठितम्' अर्थात ग्राम विश्व का लघु रूप है। विश्वविद्यालय चित्रकूट में स्थित है, जो एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। नई पीढ़ी के लिये यह स्थान आदर्श एवं प्रेरणा का केन्द्र है।

विश्वविद्यालय में कृषि, प्रबंधन, अभियांत्रिकी, लोक विज्ञान, ग्रामीण विकास एवं स्थानीय स्वशासन, लोक शिक्षा, कला, संस्कृति एवं साहित्य सहित सभी अकादमिक धारायें प्रभावी रूप में उपस्थित हैं। विश्वविद्यालय, ग्राम को समाज जीवन की मूल इकाई मानकर शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध और प्रसार कार्यों से सर्वांगीण विकास के लिए विगत 3 दशकों से अधिक समय से समर्पित प्रयास कर ग्रामोदय से राष्ट्रोदय के संकल्प में लगा हुआ है। विश्वविद्यालय ने अपनी गतिविधियों और कार्यक्रमों के माध्यम से कौशल विकास के उन्नयन एवं प्रमाणन तथा सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है तथा शासन के सहयोगी के रूप में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

प्राचीन एवं सनातन भारतीय ज्ञान की परम्परा के आलोक में आई, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 चिरवांछित जन आकांक्षाओं की सम्यक् अभिव्यक्ति है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के युगान्तरकारी प्रावधानों को लागू करने में मध्यप्रदेश अग्रणी राज्य रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने नवाचारों के लिए सकारात्मक और अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया है। विद्यार्थियों की पठन–पाठन की स्वतंत्रता, कौशल विकास के समुचित अवसर तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार आने वाले भविष्य के लिए तैयार करने की प्रतिबद्धता राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों में स्पष्टतः दिखाई देती है।

विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों को दूरवर्ती के विभिन्न पाठ्यक्रमों में अर्थपूर्ण रूप से जोड़कर इन्हें सत्र 2023–24 से पुनः संशोधित/परिवर्धित रूप में प्रारम्भ किया है। विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के प्रसार एवं रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु दूरवर्ती माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष प्रयास कर रहा है। दूरवर्ती पद्धति से संचालित विभिन्न पाठ्यक्रमों में नियमित संपर्क कक्षाओं के आयोजन, उच्च शिक्षा की स्व–अध्ययन सामग्री एवं नई शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए शिक्षार्थी को बेहतर शैक्षणिक अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चत की जा रही है।

विश्वविद्यालय के दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र द्वारा सत्र 2024–25 में संचालित परास्नातक, स्नातक तथा डिप्लोमा स्तरीय दूरवर्ती पाठ्यक्रमों के शिक्षार्थियों हेतु ई–स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करते हुये मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है।
पाठ्यक्रम से जुडे सभी शिक्षार्थियों, अभिभावकों, प्रशासकों, समन्वयकों और अन्य सभी को मेरी मंगलकामनायें

प्रो. भरत मिश्रा
कुलपति

विकास का अर्थशास्त्र (Economy of Development)

इकाई – 1 : सामाजिक एवं आर्थिक अवधारणाएँ एवं मापन

इकाई – 2 : सामाजिक आर्थिक विकास में एकीकृत उपगम, स्वास्थ्य

इकाई – 3 : क्षेत्रीय विकास, आय का वितरण एवं सामाजिक नीति

इकाई – 4 : योजना आयोग एवं योजना की प्रक्रिया

इकाई – 5 : निर्धनता एवं इसके सामाजिक आर्थिक राजनैतिक दुष्परिणाम

इकाई–प्रथम

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1विकास सामाजिक एवं आर्थिक अवधारणाएवं मापन

1.2 आर्थिक नियोजन का इतिहास एवं नियोजन के प्रकार

1.3 सामाजिक विकास के उपकरण के रूप में आर्थिक नियोजन एवंविकास

1.4 कल्याणकारी अर्थशास्त्र एवं सामाजिक विकास

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको विकास की महत्वपूर्ण संकल्पवनाओं जैसे सामाजिक विकास एवं आर्थिक विकास, आर्थिक नियोजन का इतिहास प्रकार एवं सामाजिक विकास के उपकरण के रूप में आर्थिक नियोजन की समझ प्रदान करना है तथा साथ ही सामाजिक विकास में कल्याणवादी अर्थशास्त्र की उपयोगिता को स्पष्ट करना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- सामाजिक एवं आर्थिक विकास को समझ सकेंगे,
- आर्थिक नियोजन का इतिहास एवं नियोजन के प्रकारों को भली–भांति समझ सकेंगे,
- विकास में आर्थिक नियोजन की उपादेयता समझ सकेंगे एवं
- विकास के कल्याणवादी उपागम को समझ सकेंगे।

1.1 विकास रू सामाजिक एवं आर्थिक अवधारणा एवं मापन

देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार विकास के मायने परिवर्तित होते रहे हैं। साहित्यिक दृष्टि से अंग्रेजी के 'एनवेलप' शब्द के विलोम के रूप में 'डेवलप' का तात्पर्य है किसी भी चीज को प्रकट करना/प्रस्फुटित करना जबकि 'एनवेलप' का तात्पर्य है चीजों को बंद करना। इस प्रकार विकास का अर्थ है जो वास्तविकता में अर्न्तनिहित है उसे प्रकट करना।

विकास को इच्छित दिशा की ओर परिवर्तन के रूप में भी देखा गया। परन्तु यहां यह स्पष्ट कराना आवश्यक है कि जो किसी विशेष समय, स्थान एवं संस्कृति में इच्छित है वह आवश्यक नहीं कि किसी अन्य समय, स्थान एवं संस्कृति में भी इच्छित होगा।

औद्योगिकरण के काल में विकास का निम्न स्वरूप था अवस्था से उच्च स्वरूप अवस्था की ओर संचरण के रूप में देखा गया और एक लम्बे काल तक विकास को आर्थिक अभिवृद्धि के रूप में देखा गया एवं सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं प्रतिव्यक्ति आय को विकास के मापन का आधार माना गया।

लेकिन कुछ समय पश्चात् आर्थिक अभिवृद्धि के रूप में विकास को देखने के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा को 1969 में अंगीकार किया। जिसमें आर्थिक एवं सामाजिक विकास की परस्पर निर्भरता पर बल दिया गया था तथा जिसमें निर्धनों हेतु समान अवसर प्रदान करने के लिए कार्य का अधिकार, चयन की स्वतंत्रता एवं निर्धनता उन्मूलन हेतु समता आधारित आय के वितरण की बात कही गयी थी।

द्वितीय विकास दशक (1971–80) में सम्पन्नों एवं निर्धनों के बीच की खायी को भरने पर बल दिया गया तथा उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पर बल दिया गया तथा उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पर बल दिया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ के शाही पत्र द न्यू वर्ल्ड के आर्टिकल 55 के अन्तर्गत आम जनता के जीवन स्तर को उच्च करने पूर्ण रोजगार एवं आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति तथा विकास की वृद्धि, अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृति एवं शैक्षणिक सहयोग, मानवाधिकार का सार्वभौमिक सम्मान, स्वतंत्रता, जाति, नस्ल, रंग, लिंग, धर्म के आधार पर भेदभाव का विरोध करने पर बल दिया गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महासचिव श्री बुलोस–बुल्लोस धाली के अनुसार सामाजिक विकास को वृहत मायने में समझने की आवश्यकता है। जिसके अन्तर्गत बेहतर जीवन स्तर, अवसरों हेतु अत्यधिक समानता एवं निश्चित मानवाधिकार की सुरक्षा, व्यक्तियों की क्षमता वृद्धि ताकि वे आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्रिया द्वारा अपने जीवन पर स्वयं का नियंत्रण स्थापित कर सकें।

जेम्स मिजली (James Midgley, 1995) के अनुसार, ''सामाजिक विकास नियोजित परिवर्तन की प्रक्रिया है जो कि गतिशील आर्थिक विकास के साथ सम्पूर्ण जनसंख्या के कल्याण में वृद्धि करती है।''

उन्होंने इसकी आठ विशेषताएं बतलायी हैं जो निम्नवत् हैं–

1. आर्थिक विकास के साथ सम्बन्ध,
2. अर्न्तवैषयिक दृष्टि,
3. अभिवृद्धि एवं परिवर्तन की प्रक्रिया,
4. प्रगतिशील प्रकृति,
5. हस्तक्षेपीय उपागम,
6. सामाजिक हस्तक्षेप का आर्थिक विकास से सम्बन्ध,
7. सार्वभौतिकता,
8. सामाजिक कल्याण में वृद्धि का लक्ष्य।

आसवी (ASWI) के अनुसार, ''सामाजिक विकास व्यवस्थित परिवर्तन (मूल्यों, दृष्टिकोणों, संस्थाओं, एवं अभ्यासों) की प्रक्रिया है जो उद्देश्यपूर्ण ढंग से सामाजिक नीति एवं नियोजन द्वारा परिस्थिति की सामाजिक न्या एवं सहभागी वातावरण को ध्यान में रखते हुए आम जनता विशेषकर कमजोर वर्गों के जीवन स्तर में वृद्धि लाने का प्रयास करती है।''

1.2 आर्थिक आयोजन (Economic Planning)

''आर्थिक आयोजन'' शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में कोई एकमत् नहीं है। अर्थशास्त्र विषयक साहित्य में इसका प्रयोग बहुत शिथिल रूप में हुआ है।

आयोजन एक तकनीक, एक साध्य की प्राप्ति का साध्य और वह साध्य है, जो केन्द्रीय योजना प्राधिकरण (Planing Authority) द्वारा निर्धारित किन्हीं पूर्व निश्चित तथा सुस्पष्ट लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को प्राप्त करता है। यह साध्य आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक अथवा उद्देश्यों को प्राप्त करना हो सकता है।

आर्थिक आयोजन की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

प्रो. रॉबिन्स के अनुसार,''आर्थिक आयोजन उत्पादन तथा विनिमय को निजी क्रियाओं का सामूहिक नियंत्रण या दमन है।''

हेक के अनुसार आयोजन का अर्थ है,

''केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा उत्पादकीय क्रिया का निदेशन।''

अधिकतम प्रसिद्ध परिभाषा डिकन्सन की है जिसके अनुसार आयोजन का अर्थ है ''इस विषय में प्रमुख आर्थिक निर्णय करना कि किसी वस्तु का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए, कि कब और कहां उत्पादन हो और समस्त अर्थव्यवस्था के व्यापक सर्वेद्वाण के आधार पर निर्णायक प्राधिकरण के सजग निर्णय के अनुसार उस उत्पादन को कैसे विभाजित किया जाए।'' यद्यपि इस विषय पर एकमत नहीं है फिर भी उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर, आर्थिक आयोजन का मतलब है, ''समय की एक निश्चित अवधि के भीतर निश्चित लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा अर्थव्यवस्था का आयोजित नियंत्रण तथा निदेशन।"

"आर्थिक नियोजन'' का इतिहास (History of Economic Planning)

भारत में आर्थिक विकास के साधन के रूप में आयोजन का आविर्भाव 1934 में हुआ, जबकि सर एम. विश्वेश्वरैया ने अपनी पुस्तक "Pianed Economy for India" प्रकाशित की थी। इस प्रारम्भिक कुति ने साहित्यिक क्षेत्रों में आयोजन के प्रति बहुत रूचि उत्पन्न की परिणामतः इस विषय पर कुछ और पुस्तकें निकलीं। वे ये थी रूडॉ. पी.सी. लाकनाथन की "Principles of Planning", एन.एस. सुब्बाराव की "Some aspects of Planning", और के. एन. सेन की "Economic Reconstruction".

सन् 1938 में भारत के लिए राष्ट्रीय योजना बनानें का पहला प्रयत्न किया गया, जबकि जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना हुई थी।

अगले कुछ वर्षों में, बम्बई के आठ अग्रणी उद्योगपतियों ने आयोजन की आवश्यकता को समझा और ष्भारत के लिए आर्थिक विकास की योजना (A Plan on Economic Development for India) बनाने का उपक्रम किया। अगस्त, 1044 में भारत सरकार ने

आयोजन तथा विकास विभाग स्थापित किया और उसका कार्यभार एर ए. दलास को सौंपा।

बम्बई योजना (Bombay Plan) के लगभग साथ ही इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर की और से एम. एन. राय द्वारा प्रारूपित "People's Plan"घोषित की गई।

वर्धा कमर्शियल कालेज के प्रिंसिपल एस.एन. अग्रवाल ने गांधी जी के सिद्धांतों पर आधारित एक योजना प्रस्तुत की।

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद नवम्बर, 1947 में, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने आर्थिक प्रोग्राम समिति की स्थापना की जिसके अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू थे। भारत के आर्थिक विकास में इस ढंग से मिश्रित अर्थव्यवस्था का विचार उत्पन्न हुआ आर्थिक प्रोग्राम समिति ने 25 जनवरी 1948 को अपने विस्तृत सुझाव प्रस्तुत किये और यह सिफारिशे की कि एक स्थायी योजना आयोग की स्थापना की जाए।

मार्च 1950 में, भारत सरकार ने देश के साधनों के अत्यन्त प्रभावपूर्ण तथा संतुलित उपयोग के लिए योजना तैयार करने को जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में 'योजना आयोग' की स्थापना की जुलाई 1951 में योजना आयोग ने, प्रथम पंचवर्षीय प्रारूप प्रस्तुत विचार तब से प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् योजना आयोग देश के लिए पंचवर्षीय योजना का निर्माण करता है।

आयोजन के प्रकार (Type of Planning)

आयोजन कई प्रकार के होते हैं जो आर्थिक प्रणाली, भौगोलिक स्थिति, साधनों एवं समयावधि के दृष्टिकोण से विभाजित किये जाते हैं। हम आयोजन की कुछ महत्वपूर्ण किस्मों का वर्णन करते हैं।

(क) निदेशन तथा प्रोत्साहन द्वारा आयोजन

(Planning by Direction and Inducement)

निदेशन द्वारा आयोजन –यह रूस जैसे समाजवादी समाज का अभिन्न अंग होता है। यह अबंध नीति (Lisez Fkaire) की पूर्ण अनुपस्थिति को आवश्यक बना देता है। एक केन्द्रिय प्राधिकरण होता है, जो पूर्व निर्धारित लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं के अनुसार योजना का निदेशन करता है और उसके निष्पादन का आदेश देता है। इस प्रकार की योजना व्यापक होती है और समाप्त अर्थव्यवस्था को घेर लेती है।

प्रोत्साहन द्वारा आयोजन –प्रोत्साहन द्वारा आयोजन का मतलब है मार्केट को काम में लाकर आयोजन करना। बाध्यता के बजाय अनुनय से काम लिया जाता है। इसमें उद्यम, उपयोग तथा उत्पादन की स्वतंत्रता होती है। परन्तु ये ष्स्वतन्त्रताएंष् राजय द्वारा नियंत्रण तथा नियमन के अधीन होती है।

(ख) वित्तीय तथा भौतिक आयोजन (Financial and Physical Planning)

वित्तीय आयोजन –भारतीय योजना आयोग ने लक्ष्य किया है, ''वित्तीय योजना का सार यह है कि मांगों तथा पूर्तियों में इस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया जाए कि कीमत ढांचें में प्रमुख तथा अन्योजनाबद्ध परिवर्तन किये बिना भौतिक संभाव्यताओं का यथासम्भव पूर्ण रूप से दोहन किया जा सके।''

भौतिक आयोजन –भौतिक आयोजन "साधन बंटवारों और वस्तु उत्पत्ति के रूप में विकास प्रयत्न की उलझनों को सुलझाने का प्रयत्न है ताकि आय तथा रोजगार अधिकतम किये जा सके।'' भौतिक सन्तुलन में निवेश और उत्पादन में सम्बन्धों का सही मूल्यांकन शामिल होता है।

(ग) वृष्ट तथा वार्षिक आयोजन (Perspective and Annual Planning)

''दृष्ट आयोजन'' शब्दावली आयोजन से संबंध रखती है, जिसमें 15 से 20 वर्ष की अवधि के लिए पहले से दीर्घकालीन लक्ष्य लिये कर दिये जाते हैं। योजना आयोग के अनुसार, ''दृष्ट योजना अधिक लम्बी अवधि के लिए शुरू किये जाने वाले विकासों का खाका है।''

इस प्रकार ''दृष्ट योजना का प्रमुख उद्देश्य अपेक्षाकृत कम अवधि वाली योजनाओं की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना है ताकि अलपावधि का आयोजन करने में लम्बी अवधि में हल की जाने वाली समस्याओं पर भी विचार किया जा सके।''

(घ) सांकेतिक तथा आदेशात्मक आयोजन (Indicative and Imperative Planning)

सांकेतिक आयोजन फ्रांस में प्रचलित है। यह आयोजन आदेशात्मक न होकर लचीला होता है। सांकेतिक आयोजन में निजी क्षेत्र को योजना के लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं की पूर्ति के लिये कोई आदेश नहीं दिये जाते और न ही उस पर कड़ा नियन्त्रण होता है सरकार निजी क्षेत्र को हर प्रकार की सुविधाएं प्रदान करती है परन्तु कोई आदेश नहीं देती। केवल संकेत करती है कि निजी क्षेत्र किन दिशाओं में योजना के कार्यान्वित करने में योगदान दे सकता है।

आदेशात्मक आयोजन में समस्त आर्थिक क्रियाएँ और साधन राज्य के आदेश के अनुसार ही कार्य करते हैं। उत्पादन के समस्त साधनों पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण होता है, जिसके परिणाम स्वरूप उत्पादन एवं वितरण पर भी सरकारी नियंत्रण होता है। आदेशात्मक आयोजन रूस एवं चीन में प्रचलित है।

(ङ) लोकतंत्रीय तथा सर्वाधिकारवादी आयोजन (Democratic and Totalitarian Planning)

लोकतंत्रीय आयोजन में लोकतांन्त्रिक सरकार का दर्शन ही सैद्धान्तिक आधार मान लिया जाता है। योजना के निरूपण तथा परिपालन में लोगों को प्रत्येक पर सम्बद्ध कर लिया जाता है। सरकार राजकोषीय एवं मुद्रा उपायों के माध्यम से निजी क्षेत्र के केवल आर्थिक एवं निवेश संबंधी निर्णय प्रभावित करने का प्रयत्न करती है। सर्वाधिकारी अथवा प्राधिकारी आयोजन में एक एकल योजना के अनुसार समस्त आर्थिक सक्रियता पर केन्द्रिय

नियंत्रण तथा निर्देशन रहता है। सर्वाधिकारी आयोजन में योजना प्राधिकरण ही सर्वोच्च समिति होती है। यह आयोजन अत्यन्त अनम्य है।

(च) प्रादेशिक आयोजन (Regional Planning)

प्रादेशिक आयोजन के विचार का प्रवर्तन स्टालिन से हुआ था । ज्वेग (Zweig) के अनुसार प्रादेशिक आयोजन एक राष्ट्रीय योजना के अन्तर्गत कार्यान्वित किया जाता है ताकि एक प्रदेश की विशेष आवश्यकताओं तथा उसकी जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकें। अतः प्रादेशिक आयोजन का अभिप्राय स्थान दृविषयक (Spatial) आयोजन है।

(छ) व्यवर्ती योजना (Rolling Plan)

प्रोफेसर मिर्डल प्रथम अर्थशास्त्री हैं जिन्होंने अपनी पुस्तक "Indian Economic Planning in its Broader Setting" में विकासशील देशों के लिए व्यावर्ती योजना की सिफारिश की। व्यावर्ती योजना में प्रत्येक वर्ष तीन योजनाएं बनाई जाती हैं और उन पर अमल किया जाता है। प्रथम एक योजना चालू वर्ष के लिए होती है, जिससे वार्षिक बजट तथा विदेशी मुद्रा बजट शामिल होते हैं। दूसरे, एक योजना कुछ वर्षों (3, 45 वर्ष) के लिए होती है। इसे अर्थव्यवस्था की आवश्यकतानुसार हर वर्ष बदल दिया जाता है। तीसरे प्रतिवर्ष 10, 15, 20 या और भी अधिक वर्षों के लिए एक दृष्ट योजना प्रस्तुत की जाती है। जिसमें व्यापक उद्देश्यों का उल्लेख रहता है और आगामी विकास की रूपरेखा बनाई जाती है।

सामाजिक विकास के प्रतिमान

वैश्विक स्तर पर विकास चिन्तकों के मध्य सर्वमान्य रूप से वृद्धि है कि सामाजिक विकास नियोजित परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जो इस प्रकार रचित की जाती है जिससे सम्पूर्ण जनसंख्या के आर्थिक स्थिति में सुधार के साथ–साथ कल्याण में वृद्धि हो। समय काल एवं संस्कृति के अनुसार सामाजिक विकास के प्रतिमानों में अंतर हो सकता है फिर भी सार्वभौमिक रूप से स्वास्थ्य, शिक्षा, साक्षरता, तकनीकी सुसज्जित मानव संसाधन, प्रमुख जनांकिकीय चर जैसे निम्न जन्म दर, निम्न मृत्यु दर, निम्न मातृ शिशु मृत्युदर, एवं उच्चजीवन प्रत्याशा, कुल जनसंख्या में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात, विज्ञान एवं तकनीकी की संवृद्धि, जीवन के अवसरों में वृद्धि, जीवन स्तर में सृद्धि, जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि, सकल राष्ट्रीय उत्पाद का सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक सेवाओं के प्रदाय, शोध एवं विकास पर होने वाले व्यय का अनुपात, प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था जिसमें सभी को सहभागिता का अवसर प्राप्त हो तथा वे अपने सम्बन्ध में निर्णय ले सकें। सामाजिक भेदभाव, अपराधिता एवं भ्रष्टाचार का अभाव इत्यादि ऐसे चर हैं जिसके आधार पर सामाजिक विकास का सामान्यतया मापन कर सकते हैं।

आर्थिक विकास

सामान्यतया आर्थिक विकास शब्द को कई समानार्थक शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है जैसे आर्थिक संवृद्धि, आर्थिक कल्याण, निरपेक्ष परिवर्तन, सामाजिक न्याय एवं

आर्थिक प्रगति इत्यादि। जिसके कारण आर्थिक विकास को स्पष्टतः परिभाषित करना सरल नहीं हैं। परन्तु इसके वैज्ञानिक अध्ययन एवं लोकप्रियता को दृष्टि में रखते हुये इसकी एक कार्यकारी परिभाषा प्रस्तुत करना आवश्यक होगा।

जैसा कि सामान्यतया समझा जाता है, आर्थिक विकास के अन्तर्गत कृषि, उद्योग, व्यापार, परिवहन, सिंचाई के साधन एवं ऊर्जा के साधन इत्यादि के विकास को सम्मिलित किया जाता है। यह इस प्रकार विकास की प्रक्रिया को दर्शाता है। क्षेत्रीय सुधार उस विकास की प्रक्रिया का हिस्सा है जिसे आर्थिक विकास कहते हैं व्यापक रूप से आर्थिक विकास को तीन प्रकार से परिभाषित किया गया है–

प्रथम, आर्थिक विकास का तात्पर्य है 'एक लम्बी समयावधि में वास्तविक राष्ट्रीय आय में सतत् एवं निरंतर वृद्धि।' एक कम समयावधि में किसी एक या अन्य कारणों से राष्ट्रीय आय में वृद्धि को आर्थिक विकास नहीं कहेंगे। इस परिभाषा में जनसंख्या वृद्धि को ध्यान में नहीं रखा गया है। जबकि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ ही साथ यदि जनसंख्या में भी वृद्धि हो रही है तो उस राष्ट्रीय आय में वृद्धि के परिणाम शून्य रहेंगे। अतएव आर्थिक विकास के इस संकेतांक के अन्तर्गत चक्रीय परिवर्तनों, जनसंख्या वृद्धि एवं मुद्रा के मूल्य के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि को भी ध्यान में रखना चाहिए।

द्वितीय, इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत एक लम्बी अवधि प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि को आर्थिक विकास माना गया है। सामान्यतया अर्थशास्त्रियों ने इस अवधारणा को सर्वसम्मति से माना एवं आर्थिक विकास को प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि के रूप में परिभाषित किया।

मेर (Meir) के अनुसार, ''आर्थिक विकास ''किसी भी राष्ट्र के अन्दर वह प्रक्रिया है जिससे एक समयावधि में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि हो।''

बुकानन एवं एलिस (Buchanan and Ellis) का कथन है, ''विकास का तात्पर्य है निवेश के प्रयोग द्वारा किसी भी अविकसित क्षेत्र के वास्तविक आय क्षमताओं को विकसित करना तथा उन परिवर्तनों को प्रभावित एवं उत्पादक संसाधनों में वृद्धि करना जो प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि का वचन देती है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि आर्थिक विकास हेतु आवश्यक है कि जनसंख्या वृद्धि की तुलना में वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो। इसके अलावा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि लोगों के जीवन स्तर में वास्तविक वृद्धि की गारंटी नहीं देती। यह भी संभव है कि प्रति व्यक्ति बचत दर में वृद्धि अथवा राज्य द्वारा बढ़ी हुई आय का सुरक्षा अथवा अन्य उद्देश्यों हेतु प्रयोग के कारण प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि का प्रति व्यक्ति वास्तविक उपभोग पर नकारात्मक प्रभाव पड़े। यह भी संभव है कि इससे सम्पन्न एवं निर्धनों के बीच की खायी में भी वृद्धि हो।

तृतीय, कुछ अर्थशास्त्री आर्थिक विकास को आर्थिक कल्याण के रूप में परिभाषित करते हैं। आंकन एवं रिचर्डसन (Okun and Richardson) अनुसार, ''आर्थिक विकास भौतिक कल्याण में सतत् एवं निरपेक्ष सुधार है, जिसको हम वस्तुओं एवं सेवाओं के वृद्धिकारी प्रवाह के रूप में देख सकते है।''

इस प्रकार निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय आय, सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होती है।

आर्थिक विकास के प्रतिमान

आर्थिक विकास के प्रतिमान प्रमुख रूप से सकल राष्ट्रीय उत्पाद, प्रति व्यक्ति आय, भौतिक वस्तुओं के उपभोग की दर, अधोसंरचना विकास, जनसंचार, आयात की तुलना में ज्यादा निर्यात इत्यादि है।

1.3 सामाजिक विकास के उपकरण के रूप में आर्थिक नियोजन एवं विकास

भारत संभवतः पहला अल्पविकसित प्रजातांत्रिक देश है जिसने विकास के लिए आर्थिक आयोजन का मार्ग अपनाया। सन् 1951–52 से भारत अपने संसाधनों का योजनाबद्ध प्रयोग कर रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय सामंतवादी एवं बाजार–प्रणाली पर आधारित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तुलना में देश के आर्थिक विकास के लिए आयोजन–प्रणाली को श्रेष्ठ ठहराया गया । सिद्धान्त के स्तर पर भी यह स्पष्ट था कि विकसित देशों की बाजार–तंत्र मूलक आर्थिक प्रणाली अल्पविकसित देशों की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में समर्थन होगी। निजी व्यवसाय केवल उद्योग विशेष को बढ़ा सकता था, संतुलित रूप में पूरी अर्थव्यवस्था को नहीं। क्योंकि देश के आर्थिक विकास के लिए भारी मात्रा में संसाधनों को जुटाना आवश्यक था और साथ ही देश की उत्पादन क्षमता के सृजन और उसमें शीघ्र वृद्धि लाने के लिए संसाधनों के प्रमुख भाग को आधारिक संरचना सम्बन्धी सुविधाओं, (बिजली, परिवहन, संचार, शिक्षा, प्रशिक्षण आदि) की व्यवस्था तथा पूंजीगत उद्योगों (मशीनें, उपकरण आदि) की स्थापना और उनके विकास में लगाया जाना जरूरी था।

निजी क्षेत्र यह सब कार्य संतोषजनक ढंग से नहीं कर सकता था। न तो यह आवश्यक मात्रा में संसाधन जुटा सकता था और न ही आधार मूलक उद्योगों की स्थापना की दिशा में तेजी से अग्रसर हो पाता। सामान्यतः यह शीघ्र एवं अधिकतम निजी लाभ दे सकने वाले क्रिया–कलापों में ही अपने संसाधनों का प्रयोग करता, इसका अर्थ था धनी वर्ग के लिए उपयोग वस्तुओं का उत्पादन इससे निजी लाभ तो कमाया जा सकता है, लेकिन इसके भरोसे देश का आर्थिक एवं सामाजिक विकास संभव नहीं है। अतएव सही अर्थ में जनसाधारण के हित को ध्यान में रखते हुए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सरकार को आगे आना था और स्पष्टतः इस कार्य को निभाने के लिए केवल बाजार–तंत्र पर निर्भर नहीं रहा जा सकता था। प्रमुख रूप से आयोजन के माध्यम से ही सरकार यह भूमिका भली प्रकार निभा सकती थीं इस प्रकार अर्थव्यवस्था के विकास एवं जनकल्याण की दृष्टि से नियोजन एक प्रमुख उपकरण है जिसका कोई विकल्प नहीं है।

नियोजन के प्रारम्भिक काल में यह भी अनुभव किया गया कि भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास के आरम्भिक तत्व मौजूद नहीं है, संसाधनों की जानकारी, बचत एवं पूंजी तथा कुशल प्रबंध का अभाव था। अतएव मात्र अर्थव्यवस्था की कमजोरियों को दूर करने के लिए ही नहीं, बल्कि नियोजन को देश की मूल आर्थिक समस्याओं के समाधान का सहायक उपकरण माना गया। निवेश की मात्रा बढ़ाना, देश की उत्पादन क्षमता में वृद्धि लाना,

जनसंख्या पर नियंत्रण रखना, बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए जल, अनाज, वस्त्र और आवास की व्यवस्था करना, बाढ़ एवं सूखे के विरूद्ध सुरक्षा की व्यवस्था करना आदि समस्याओं का समाधान आर्थिक नियोजन द्वारा ही संभव था।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत जब एक आर्थिक व्यवस्था का चयन कर रहा था तब जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में राष्ट्र ने पूंजीवाद एवं समाजवाद के मिश्रित स्वरूप को अपनाने का निर्णय लिया, इस अव्यवस्था का उद्देश्य दोनों व्यवस्थाओं के सर्वोत्तम को शामिल करना था। इसकी विशेषता थी निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों का संयुक्त संचालन और उसी के अनुसार आर्थिक संसाधनों का आबंटन।

वास्तव में नियोजन का उद्देश्य एवं कनरूयपण देश की तात्कालीन आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। स्वतंत्रता पश्चात काल में भारत देश के विभाजन की समस्या और द्वितीय विश्वयुद्ध से उत्पन्न सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा था। सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि विश्व के अधिकांशतः राष्ट्र द्वितीय विश्व युद्ध के दुष्परिणामों से जूझ रहे थे। ऐसे समय तीव्र गति से आर्थिक विकास का नियोजन ही एक मात्र उपाय दिख रहा था। अर्थशास्त्रियों की ऐसी सोच थी कि तीव्र गति से आर्थिक विकास के माध्यम से ही युद्ध से तबाह हुई अधो–संरचनाओं का निर्माण एवं आर्थिक मंदी से जूझ रहे अर्थव्यवस्था को दुरूस्त किया जा सकता है। इसलिए नियोजन में आर्थिक विकास को ज्यादा महत्व दिया गया एवं योजना का प्रमुख लक्ष्य था राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय एवं सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि थी। ऐसा माना गया कि यदि प्रति व्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी तो पूंजी निवेश, उत्पादन एवं रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी। जिससे देश में गरीबी कम होगी। चूंकि भारतीय संविधान भारत को लोकतांत्रिक कल्याणकारी राज्य का प्रमुख उद्देश्य होता है। अतएव सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना भी नियोजन का प्रमुख उद्देश्य है। इस उद्देश्य के दो प्रमुख आयाम है एक तो समाज के सबसे गरीब वर्ग के आर्थिक उत्थान से सम्बन्धित है। इसका अर्थ है गरीबी रेखा के नीचे गुजर–बसर करने वाले लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना। सामाजिक न्याय का दूसरा आयाम आर्थिक असमानता को कम करना है। इस उद्देश्य को व्यक्तिगत स्तर परसम्पत्ति का पुनर्वितरण करके प्राप्त करना है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसका सम्बन्ध भूमि के न्यायोचित वितरण से है तथा शहरी तथा औद्योगिक क्षेत्रों में अन्तक्षेत्रीय विषमताओं को कम करना भी शामिल है।

1950 के दशक में संयुक्त राष्ट्र संघ ने तीव्र गति से विकास के पोषण हेतु सभी राष्ट्रों को जन–आर्थिक नियोजन की सिफारिश की थी। जिसके आधार पर विश्व के अधिकांशतः राष्ट्रों में आर्थिक नियोजन पर बल दिया गया था लेकिन बाद में ऐसा देखा गया कि तीव्र आर्थिक विकास से पूंजीपति और धनी एवं निर्धन और अधिक निर्धन होते जा रहे हैं, अमीरी एवं गरीबी के बीच की खाई और बढ़ गयी। इसके अतिरिक्त परिस्थिति की एवं सामाजिक संस्कृति पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगा सन 1970 के दशक में संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक नये दृष्टिकोण को अपनाया, जिसमें आर्थिक उन्नति को सामाजिक विकास से एकीकृत किया गया। इस दृष्टिकोण को एकीकृत सामाजिक–आर्थिक विकास योजना के नाम से जाना जाता है। 1970 के दशक के दौरान राष्ट्रीय योजनाओं ने विकास की निर्धनता कम करने और जीवन स्तर को उच्च करने के संदर्भ में प्रतिपादित करना

आरम्भ किया। सामाजिक संकेतांकों को आर्थिक संकेतांकों के पूरक के रूप में प्रयोग करने में वृद्धि हुई।

योजनाओं में सामाजिक क्षेत्रों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, ग्राम विकास, आवास और सामाजिक कार्य सेवाओं से सम्बन्धित अध्यायों को भी शामिल किया जाने लगा। सामाजिक योजनाकार लोगों के कल्याण में आने वाली बाधाओं को लेकर चिंतित थे जबकि कुछ लोगों ने प्रगतिशील सामाजिक परिवर्तन में बाधक शोषण, धन के केन्द्रीयकरण एवं उत्पीड़न पर ध्यान केन्द्रित किया कुछ अन्य लोग मानव–पूंजी निर्माण के लिए निवेश को सक्रिय करने हेतु प्रतिबद्ध थे। 1980 के दशक तक सामाजिक और आर्थिक योजना निर्माण को सम्बद्ध करने तथा विकास की एक समान विचारधारा को प्रोत्साहित करने में काफी उन्नति कर ली गयी थी।

1970 और 1980 के दशकों में दो बड़े तेल संकटों तथा प्रत्याशित सार्वभौमिक ब्याज दरों में वृद्धि से अनेक विकासशील देश ऋणग्रस्त हो गये तथा अनेक सरकारें पूर्व के ऋण को पूरा करने के लिए अतिरिक्त ऋण एवं सहायता लेने पर विवश हो गई। इसके परिणाम स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा संरचनात्मक समायोजन नीतियां लागू की गई। जिसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्थाओं के उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया चालू की गयी जो अर्थ व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप, सामाजिक व्यय एवं सामाजिक योजना को सीमित करती हैं। इसके परिणाम स्वरूप 1970 में अपनाई गयी योजना उपक्रम बाधित हो गये और कुछ मामलों में अधूरे छोड़ दिये गये फिर भी कुछ देशों में एकीकृत सामाजिक आर्थिक योजना की अपनी प्रतिबद्धता को पूरा करने का प्रबंध कर लिया।

1.4 कल्याणवादी अर्थशास्त्र एवं सामाजिक विकास (Welfare Economics and Social Development)

कल्याणवादी अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त की वह शाखा है जो कि मुख्यतया वैकल्पिक नीतियों (Alternative Policies) की सामाजिक वांछनीयता (Social Desirability) के मूल्यांकन से सम्बन्धित होती हैं, दूसरे शब्दों में, यह कुछ कसौटियों या कथनों को प्रस्तुत करता है जिनके आधा पर, सामाजिक कल्याण में सुधार या वृद्धि की दृष्टि से वैकल्पिक नीतियों को आंका जाता है। सामाजिक कल्याण में वृद्धि या नुकसान को कुछ सामाजिक लक्ष्यों (Social goals) के सन्दर्भ में आंका जाता है। ये सामाजिक लक्ष्य वे होते हैं, जो कि यों तो समाज द्वारा 'सामान्यतया स्वीकृत' होते हैं अथवा वे होते हैं जो कि नीति नियोजकों द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। विश्लेषणात्मक कल्याणवादी अर्थशास्त्र (Analytical Welfare economics) इन लक्ष्यों को दिया हुआ मान लेता है और इसके बाद कल्याणकारी कसौटियों या कथनों को प्रस्तुत करता है जिनके आधार पर वैकल्पिक नीतियों को आंका जाता है या सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिये नीति– सुझाव दिये जाते हैं।

यद्यपि कल्याणवादी अर्थशास्त्री की प्रकृति आदर्शातमक है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह अवैधानिक है। कल्याणवादी अर्थशास्त्र का उद्देश्य सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना होता है इस प्रकार उसकी प्रकृति आदर्शातमक है, परन्तु वांछनीय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये निर्मित की जाने वाली नीतियों को अध्ययन निश्चित ही

विश्लेषणात्मक एवं वैज्ञानिक है। दूसरे शब्दों में, किसी विशेष नीति के औचित्य का एक अर्थशास्त्री तब तक मूल्यांकन नहीं कर सकता और न ही वैकल्पिक नीतियों के बीच चयन कर सकता है, जब तक कि उन नीतियों के सम्भावित परिणामों तथा प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों दोनों पर ध्यान नहीं देता। विश्लेषणात्थमक कल्याणवादी अर्थशास्त्र का इस प्रकार के मूल्यांकनों का सम्बन्ध प्रविधि से होता है।

कल्याणवादी अर्थशास्त्र की परिभाषा–

टाईबर साइटोवोक्सी (Tibor Scitovsky) के अनुसार, ''कल्याणवादी अर्थशास्त्र के सिद्धांत का वह भाग है जिसका सम्बन्ध मुख्यतया नीति (Policy) से होता है।"

(Welfare Economics is that part of economic theory which is concerned primarily with policy.)

कल्याणवादी अर्थशास्त्र समाज के सदस्यों के समूह के रूप में हित का अध्ययन करता है, हित को ज्ञात करने के लिए यह 'उपयोगिता' या 'कल्याण' के विचार का प्रयोग करता है। कल्याणवादी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मुख्यतया सामाजिक कल्याण से होता है। सामाजिक कल्याण में वृद्धि की दृष्टि से आर्थिक नीतियों का निर्माण कुछ लक्ष्यों अथवा आदर्शों के संदर्भ में किया जाता है, इसलिये कल्याणवादी अर्थशास्त्र को आदर्शवादी अर्थशास्त्र (Normative Economics) भी कहते हैं ।

कल्याणवादी अर्थशास्त्र के उद्देश्य (Objectives of Welfare Economics)

कल्याणवादी अर्थशास्त्र के निम्न उद्देश्य हैं–

1. कल्याणवादी अर्थशास्त्र समस्त समाज के आर्थिक कल्याण को अधिकतम करने के उपायों तथा साधनों का अध्ययन करता है। आर्थिक कल्याण का तात्पर्य संतुष्टि से है जो कि समाज के सदस्य वस्तुओं और सेवाओं के उपयोग से प्राप्त करते हैं।

2. यह उन दशाओं (Indices) को बताता है जिनके आधार पर यह मालूम किया जा सकता है कि व्यक्ति एक वातावरण की अपेक्षा दूसरे वातावरण में अधिक संतुष्ट है अथवा असंतुष्ट है या उसका आर्थिक कल्याण अपरिवर्तित रहता है।

3. यह उन दशाओं को भी बताता है जिनके आधार पर यह मालूम किया जा सकता है कि एक समयावधि में दूसरे की अपेक्षा सम्पूर्ण समाज का आर्थिक कल्याण बढ़ गया है अथवा घट गया है। व्यक्ति के कल्याण की अपेक्षा सम्पूर्ण समाज का कल्याण अधिक महत्वपूर्ण है।

इकाई–2

2.1 भारत में सामाजिक नियोजन सामाजिक आर्थिक विकास में एकीकृत उपागम, स्वास्थ्य, शिक्षा, नगरीय विकास आवास एवं सामुदायिक विकास।

2.2 जनसंख्या वृद्धि और इसके सामाजिक आर्थिक परिणाम।

2.3 सामाजिक आर्थिक विकास के घटक एवं समस्याएं, परिस्थितिकी, सांस्कृतिक, सामाजिक क्षेत्रीय राजनैतिक एवं जनांकिकी।

2.1 सामाजिक नियोजन

सामाजिक नियोजन का अर्थ–

नियोजन शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों और संदर्भों में किया जाता है। सामाजिक नियोजन के अंतर्गत मुख्य रूप से समाज कल्याण सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक अभिरक्षा से संबंधित कार्य आते हैं, इसके विपरीत, आर्थिक नियोजन के अंतर्गत, आर्थिक जीवन से संबंद्ध पक्षों का समावेश होता है। सामान्यता ऐसा कोई भी नियोजन, जो पूर्ण या आंशिक रूप से समाज व्यवस्था या उसकी संबंधित उप–व्यवस्थाओं में अपेक्षित परिवर्तन लाने के लिए किया जाता है, सामाजिक नियोजन है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तनों को व्यवस्थित और संतुलित कर निश्चित दिशा प्रदान करना, सामाजिक नियोजन का व्यापक रूप है। इस व्यापक सामाजिक नियोजन की कार्यप्रणाली को विभिन्न भागों में विभाजित किया जा सकता है। यथा, आर्थिक उपव्यवस्था में परिवर्तन के लिये विशेष योजना बनाई जा सकती है, जो मुख्य रूप से आर्थिक होगी और ऐसी योजना को आर्थिक नियोजन में शामिल किया जायेगा।

व्यापक दृष्टि से समाज–व्यवस्था के किसी भी भाग से संबंधित नियोजन सामाजिक नियोजन के क्षेत्र में आता है। कुछ समय पूर्व तक तुलनात्मक दृष्टि से आर्थिक नियोजन का अधिक महत्व रहा है। इसके दो प्रमुख कारण रहे है। सर्वप्रथम आर्थिक नियोजन समाज की भावनाओं, प्रथाओं, रूढ़ियों, रीति–रिवाजों और सांस्कृति मूल्यों पर प्रत्यक्ष आघात नहीं करता। आर्थिक नियोजन सामाजिक नियोजन से पूर्णतया स्वतंत्र है, ऐसी बात नहीं है।

आर्थिक नियोजन अविकसित और विकसित राष्ट्रों की प्रगति के संदर्भ में विशेष महत्वपूर्ण है। सामान्य रूप से कोई भी स्वतंत्र राष्ट्र अपने उत्तरदायित्व की सीमा में वृद्धि करता है। नियोजन इसी उत्तरदायित्व का परिणाम है। योजनाबद्ध विकास का उद्देश्य केवल उत्पादन और जीवन स्तर को ऊंचा करना नहीं, बल्कि स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक आदर्शों पर आधारित, ऐसे समाज की स्थापना करना है। जिसमें राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थायें, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के साथ आगे बढ़ें।

भारत में सामाजिक नियोजन

भारत में नियोजन की पृष्ठभूमि :–

भारत वर्ष में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही योजनाओं का विचार एका एक उदय नहीं हुआ। सर्वप्रथम 1937 में विश्वेश्वरैया ने भारत के योजनाबद्ध आर्थिक विकास की संभावना के बारे में लिखा था।

1940 में श्री सुभाषचंद्र बोस ने स्वर्गीय पं. नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस में योजना आयोग संगठित किया इसी में भारत की बहुमुखी उन्नति का एक विवरण यहां भी बनाया गया। तत्पश्चात् आठ उद्योगपतियों ने मिलकर बम्बई योजना के नाम से देश की उन्नति के लिए एक योजना बनायी। श्रमिक वर्ग की ओर सक एम.एन. राय ने एक पीपुल्स प्लान प्रस्तुत किया। श्री मन्नारायण ने गांधी योजना के नाम से एक आर्थिक योजना प्रस्तुत की।

1944 में ब्रिटिश सरकार ने इन योजनाओं को मान्यता देते हुये एक योजना आयोग स्थापित किया। 1949 में राष्ट्रीय योजना प्रस्तुत हुयी। 1950 में श्री नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना आयोग गठित हुआ।

इस प्रकार हम अपने सीमित साधनों और असीमित समस्याओं के प्रति दासता काल से ही जागरूक है। इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही हमने इस दिशा में सक्रिय कदम उठाया और 1951 से हमारे यहां योजनाएं कार्य रूप में परिणत कर दी गयी।

पूर्व तैयारी के साथ किया काम करने की रूपरेखा, आय व्यय का लेखा जोखा बना लेने तथा उसके लाभ हानि का पूर्व अनुमान लगा लेने को ही योजना कहते हैं। किसी भी लक्ष्य की पूर्ति हेतु उसकी वैज्ञानिक रूप से पूर्व ही समीक्षा कर लेने को ही योजना कहते हैं, उसे हम योजना का नाम दे सकते हैं। पंचवर्षीय योजनाएं भारत में देश को समृद्ध, आत्मनिर्भर तथा सम्पन्न बनाने में साध्य के साधन हैं। जितना बड़ा देश होगा समस्याएं उतनी अधिक होंगी और स्वाभाविक रूप से योजना उतनी ही बड़ी होगी।

पिछले देशों को वर्तमान सभ्यता की स्थिति तक लाने का सबसे उत्तम उपाय नियोजन ही है।

योजना बनाकर समस्याओं के निदान तथा लक्ष्यों का क्रम निर्धारित किया जाता है, जिससे कि देश के पिछड़ेपन को वैज्ञानिक विधि से दूर किया जा सके। यूरोप के पिछड़ेपन के देश रूस का संसार के प्रमुख समृद्ध देशों में होने का रहस्य भी नियोजित अर्थ व्यवस्था है।

समाज के सभी वर्गों, जातियों तथा समुदायों के बीच उसकी वर्तमान स्थिति को देखते हुए यथेष्ट रूप से सामाजिक न्याय योजना से ही संभव हो सकता है। प्रजातंत्रीय व्यवस्था कल्याणकारी राज्य की स्थापना भी योजना से ही पूरी हो सकती है। जिसमें व्यक्ति को उसके भाग्य पर ही न छोड़कर राज्य उनके में हर संभव सहयोग देता है।

Integrated Approach in Social*Economic Development: health, Education, urban development, housing and community development.

कोई भी आर्थिक विकास तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि सामाजिक विकास न हो। सामाजिक विकास के अनेक क्षेत्र हैं, जिनमें कि–

स्वास्थ्य, शिक्षा, नगरीय विकास, आवास और सामुदायिक विकास, रोजगार के नये अवसर, शिक्षा, महिला साक्षरता तथा समाज में बराबर की सहभागिता, जनसंख्या नियंत्रण शिशु कल्याण, अपंग तथा बृद्धजनों का कल्याण, स्वच्छ पीने का पानी और संचार आदि।

सामाजिक विकास के इन अनेक क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य हो ऐसे आधार हैं जिन पर विकास को निर्णायक मोड़ पर ले जाया जा सकता है। आंकड़ों पर अगर जाया जाए तो स्वास्थ्य और शिक्षा पर केन्द्र सरकार सकल राष्ट्रीय उत्पादन का मात्र 3.3 प्रतिशत ही व्यय करती है। इसमें स्वास्थ्य और शिक्षा व अंश क्रमशः 1.5 और 1.8 है। 1955 में कोपेनहमन सम्मेलन में गरीबी हटाने के लिए शिक्षा के अधिकाधिक प्रसार पर ध्यान दिया गया था अनेक विद्वानों ने कहा है कि शिक्षित व्यक्ति कदाचित ही ऐसा गरीब होगा, जो दो जून की रोटी की व्यवस्था न कर सके, किन्तु भारत इसका अपवाद है, अनेक शिक्षित व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं, हो सकता है ऐसा भारतीय सामाजिक संरचना में दोष के कारण है, जहां गरीबी और अमीरी का मूल्यांकन भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाता है। शिक्षा जहां जागरूकता का विकास करती है, वही स्वास्थ्य व्यक्ति की कार्यक्षमता को विकसित करता है।

53 वर्षों की बूढ़ी होती आजादी के भारतीय गांव सामाजिक क्षेत्र की इन दो बुनियादी सुविधाओं से वंचित है। शिक्षा की अनेक नीतियों के बावजूद भी आज भी संविधान के तहत शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क नहीं किया जा सका है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य की हालत तो और भी बदतर है। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं पर सकल राष्ट्रीय उत्पादन का मात्र 1.5 प्रतिशत ही व्यय किया जाता है जबकि चीन और अमेरिका में इसका प्रतिशत 2.0 तथा 65 है। स्वास्थ्य सेवाओं के इससे अधिक बुरे होने का प्रमाण और क्या होगा, जहां जनसंख्या वृद्धि को भी अभी तक रोका नहीं गया है। गांव में अस्पतालों का अभाव है, डाक्टर गांवों की ओर जाना नहीं चाहते। भारत में नगरीय जनसंख्या का ग्रामीण जनसंख्या के प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हो रहा है और ऐसा लगता है कि ग्रामीणों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। ग्रामीण विकास तथा नगरीय विकास तथा सामुदायिक विकास के लिए निम्न लक्ष्य निर्धारित किए गये–

1. प्राथमिक शिक्षा पर बल देकर 15–35 वर्ष की आयु वर्ग में निरक्षता को पूर्णयतः दूर करना।

2. स्वच्छ पीने का पानी टीकाकरण सहित प्राथमिक उपचार सेवाएं उपलब्ध कराना।

3. खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए कृषि का विकास करना तथा विकास करना।

4. उत्पादन के अन्य क्षेत्रों का बहुमुखी ऊर्जा परिवहन संचार एवं सिंचाई सहित आन्तरिक संरचना को मजबूत करना, ताकि विकास प्रक्रिया को तेज किया जा सके।

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 भारत में सामाजिक नियोजन रू सामाजिक–आर्थिक विकास में समन्वित उपागम स्वास्थ्य, शिक्षा, नगरी विकास, आवास एवं सामुदायिक विकास

2.2 जनसंख्या वृद्धि एवं इसके सामाजिक आर्थिक परिणाम

2.3 सामाजिक आर्थिक विकास के घटक एवं समस्यायें, परिस्थितिकी, सांस्कृतिक, सामाजिक क्षेत्रीय, राजनैतिक एवं जनांकिकीय

2.0 उद्देश्य

यह इकाई आपको भारत में सामाजिक आयोजन के प्रमुख घटकों, सामाजिक–आर्थिक विकास के समन्वित उपागम को समझने में सहायता करती है। यह जनसंख्या वृद्धि की समस्या के साथ–साथ विकास की प्रमुख द्वन्द्वों यथा परिस्थितिकीय, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, क्षेत्रीय एवं जनांकिकीय को स्पष्ट करती है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः

- भारत में सामाजिक नियोजन एवं विकास के समन्वित उपागम को समझ सकेंगे,
- जनसंख्या की समस्या को समझ सकेंगे, तथा
- सामाजिक–आर्थिक विकास के प्रमुख्स द्वन्द्वों को समझ सकेंगे।

2.2 जनसंख्या वृद्धि (Population Growth)

जनसंख्या वृद्धि से तात्पर्य उस स्थिति से है, ''जब देश की जनसंख्या उत्पादन और आय से संबंधित इच्छित जीवन स्तर की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ती है।'' ऐसा कहा जाता है कि वर्तमान जीवन स्तर को बनाए रखने के लिए यदि देश की जनसंख्या में प्रतिशत की वृद्धि होती है, तो राष्ट्रीय उत्पादन (आय) में कम से कम 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि होनी चाहिए।

भारत में वर्तमान जनसंख्या की वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत वार्षिक है, जो कि उस समय जनसंख्या विस्फोट नहीं की जाएगी, जब राष्ट्रीय आय में औसतन 10 प्रतिशत वृद्धि प्रतिवर्ष की दर से हो।

जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक प्रभाव :–

जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक प्रभाव को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से न समझा जा सकता है।

(1) शिक्षा –जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप पिछड़े राष्ट्रों में निरक्षरों की संख्या बढ़ने की संभावना रहती है। साथ ही शिक्षा की गुणवत्ता में भी कमी आती है।

(2) गरीबी – आवश्यकता से अधिक मात्रा में जनसंख्या में वृद्धि होने पर गरीबी बढ़ती है जो कि समाज पर दुष्प्रभाव डालती है।

(3) अपराध – जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप सभी के लिए भरण–पोषण के साधन जुटा पाना सम्भव नहीं होता। ऐसी दशा में अपराध बढ़ते हैं।

(4) पारिवारिक विघटन – परिवार के सदस्यों की संख्या बढ़ने पर नियंत्रण की भी समस्या पैदा हो जाती है ऐसी स्थिति में पारिवारिक विघटन की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

(5) नागरिक समस्याएं – जनसंख्या वृद्धि औद्योगीकरण और नगरीकरण से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को जन्म देती है। परिणामस्वरूप उद्योगों और नगरों द्वारा जनित सामाजिक समस्याएं पनपती हैं।

जनसंख्या वृद्धि के आर्थिक प्रभाव :–

हमारे देश में बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक विकास के लिए अनेक रूप से बाधक सिद्ध हो रही है, जिसका अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं।

1. राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय :–

जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति आय के स्तर एवं रहन–सहन के स्तर में सुधार करना संभव नहीं होता। जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय भी प्रभावित होती है।

2. जनसंख्या वृद्धि और पूंजी निर्माण :–

जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति प्राकृतिक साधनों में भी कमी हो जाती है। निर्माण का कार्य एक और उत्पादकता है। ऐसी परिस्थिति में पूंजी समस्या बन जाता है।

3. जनसंख्या एवं मूल्य वृद्धिः–

जनसंख्या के बढ़ने से वस्तुओं की प्रभावपूर्ण मांग में भी वृद्धि हो जाती है, किन्तु उसी मात्रा में पूर्ति न होने पर वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं।

4. जनसंख्या वृद्धि और बेकारी :–

बढ़ती जनसंख्या देश में बेकारी, अर्द्ध– बेकारी, एवं छिपी बेकारी को जन्म देती है, जो कि देश के आर्थिक विकास में बाधक है।

5. भुगतान संतुलन की समस्या :–

तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या भुगतान संतुलन की समस्या को अधिक गंभीर बना देती है। अधिक जनसंख्या के कारण निर्यात योग्य आधिक्य कम रहता है, लेकिन आयात की आवश्यकता बढ़ जाती है। इस दशा का भी आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

2.3 सामाजिक एवं आर्थिक विकास के घटक एवं समस्याएं : सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक पारिस्थितिक एवं जनांकिकीय :

दशक 1950, 1960 के दौरान विश्व के अधिकांशतः विकासशील राष्ट्रों में आर्थिक संवृद्धि के साथ सामाजिक उन्नति के उद्देश्य को लेकर नियोजन किया गया। भारत में पूंजीवाद एवं समाजवाद के सर्वोत्तम का संमिश्रण कर मिश्रित अर्थव्यवस्था नीति लागू की गयी। सैद्धान्तिक स्तर पर देखा जाये तो विकास का पश्चिम का नमूना अपनाया गया जिसमें अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक व्यवस्था का आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण एवं पश्चिमीकरण प्रभावकारी घटक रहे। इसे विकास का परम्परागत सिद्धान्त कहते हैं, जिसके निम्न दृष्टिकोण है–

1. पश्चिमी औद्योगिक देश प्रगति के पथ पर चलकर विकसित है जबकि अन्य औद्योगिक देश अविकसित है।

2. चूंकि सभी देशों के लोगों की क्षमताएं एवं मानवाधिकार एक से हैं, अतः विभिन्न राष्ट्रों के बीच की असमानता प्राकृतिक नहीं हैं, और जिसको निरन्तर प्रयासों से दूर किया जा सकता है।

3. संगठित नियोजित प्रयासों एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण, विज्ञान तथा तकनीकि के प्रयोग द्वारा विकास किया जा सकता है एवं आर्थिक उत्पादनों में वृद्धि की जा सकती है।

4. अपने नागरिकों की आशा एवं महत्वाकांक्षा के प्रतिनिधि के रूप में राष्ट्र की सरकारें महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर विकास के पथ पर अग्रसर हो सकती हैं।

5. सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं प्रतिव्यक्ति आय के संकेताकों द्वारा विकास का मापन किया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था कृषि से उद्योग एवं उद्योग से सेवाओं की ओर अग्रसर होती हैं।

6. विकास का लक्ष्य है लोगों के जीवन स्तर में सुधार एवं विभिन्न सामग्रियों का उपभोग।

सामाजिक एवं आर्थिक असमानता की समस्याएँ

स्वतंत्रता के पश्चात् यह पूर्वानुमान लगाया गया था कि .....

सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जनांकिकीय समस्याएं .....

विकास की प्रक्रिया .....

पारिस्थितिकीय समस्याएँ .....

1970 एवं इसके बाद .....

The Dilemmas of Development : चार दशकों से विकास के विचार ने विश्व के अधिकांश देशों के नीतियों का निर्देशन किया। विकास ने राज्य, लोक एवं निजी संगठनों

के उद्देश्यों एवं प्रयासों को आकार दिया एवं पाश्चात्य के विकास के नमूनों का अनुकरण किया गया।

विकास के परम्परागत सिद्धान्त के निम्न दृष्टिकोण हैं–

1. पश्चिमी औद्योगिक देश प्रगति के पथ पर चलकर 'विकसित' है जबकि अन्य गैर–औद्योगिक देश अविकसित है।

2. जबकि सभी देशों के लोगों की क्षमता एवं मानवाधिकार एक से हैं अतः विभिन्न राष्ट्रों के बीच की असमानता प्राकृतिक नही हैं और जिसको कि निरन्तर प्रयासों से दूर किया जा सकता है।

3. संगठित नियोजित प्रयासों द्वारा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा विज्ञान तथा तकनीकि के प्रयोग द्वारा विकास किया जा सकता है एवं आर्थिक उत्पादनों में वृद्धि की जा सकती है।

4. अपने नागरिकों की आशा एवं महत्वाकांक्षा के प्रतिनिधि के रूप में राष्ट्र की सरकारें महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन कर विकास के पथ पर अग्रसर हो सकती है।

5. सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी.) एवं प्रति व्यक्ति आय के संकेतांकों द्वारा विकास का मापन किया जा सकता है। जिसके अन्तर्गत आर्थिक व्यवस्था कृषि–औद्योगिक–सेवा की तरफ परिवर्तित होती है।

6. विकास का लक्ष्य है लोगों के जीवन स्तर में सुधार, विभिन्न सामग्रियों का उपभोग।

Cunsumption v/s Conservation

Material den v/s Sponpurel progress

The Dilemma of Equality, Cultural Citizens of Den, Ecological Citizene of den

The dilemma of equality : स्वतंत्रता के पश्चात् यह पूर्वानुमान लगाया जा सकता है कि तीव्र औद्योगिकीकरण एवं भारत के एक मजबूत राष्ट्र बनने से यह पश्चिम के माडल को Adopt करते हुए विकास करेगा जिसको कि विश्वसरैया ने कहा था औद्योगिकरण या Perish और स्वतंत्रता के पश्चात् इसी आर्थिक विकास के माडल को औपचारिक संस्थागत स्वरूप प्रदान किया गया एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना में औद्योगिकीकरण हेतु प्रयास किया गया।

- भारतीय अर्थशास्त्रियों ने विकसित राष्ट्रों एवं भारत के मध्य आय एवं उत्पादन की असमानताओं की व्याख्या करने का प्रयास किया और ऐसी नीतियों का निर्माण किया जिससे यह असामनता दूर होती है। इन नीतियों के कारण अर्थव्यवस्था कृषि से उपयोगोन्मुख हुई।
- 1960 के मध्य में विकास के इस माडल की आलोचना प्रारम्भ हो गयी थी, क्योंकि पश्चिम का माडल विकासशील राष्ट्रों के शोषण पर निर्भर था।
- पूंजीवादी अर्थव्यवस्था केन्द्रक एवं सीमान्त सिद्धांत पर कार्य कर रहा था।

- एक राष्ट्र के अंदर की आर्थिक एवं राजनैतिक असमानताएं भी विकास में बाधक थी–भूस्वामित्व, आर्थिक संसाधन एवं राजनैतिक सहभागिता।
- वितरण से अधिक उत्पादन पर ध्यान देने से चेहरे समाज की स्थापना हुई जहां एक और ऐसा सबूत था जिसके पास विकसित राष्ट्रों जैसा जीवन स्तर था जबकि एक बड़ी जनसंख्या जो कि अपना श्रम तथा सेवा प्रदान करती थी, के पास अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की समस्या थी। इस प्रकार से विभिन्न राष्ट्रों के मध्य एवं एक ही राष्ट्र के अंदर समानता की समस्या विकास के संकट के रूप में उभर कर आयी।
- ग्रामीण विकास के महत्वाकांक्षी योजना एवं कार्यक्रमों का लाभ भू–स्वामियों को ही प्राप्त हुआ, सरकारी निर्देशों एवं आर्थिक वृद्धि का गैर अनुपातिक हिस्सेदारी हुई।
- लिंग के स्तर पर भी विकास के मॉडल में विभिन्नता नजर आती है। सभी सिद्धांतकार एवं विकास अभ्यासकर्ता पुरुष थे जिसकी वजह से नीति निर्माण एवं इसके क्रियान्वयन में लिंग–भेद स्पष्ट होता है। बहुत से मामलों में, स्त्री एवं पुरूष के विकास के चयन में गुणात्मक भिन्नता है। उदाहरण स्वरूप ग्रामीण भारत में पुरूष ऐसे कार्यक्रमों को चतममित करते हैं जिससे उनका सम्पर्क वाह्य दुनिया से ले सकें जैसे– सड़क परिवहन, संचार अथवा जिससे उनकी आय में वृद्धि हो (Cash Crops) जबकि महिलाओं ने पूछने पर शुद्ध जल की उपलब्धता पर ज्यादा जोर दिया।
- महिलाओं की जो संख्या होनी चाहिये इसमें 10 करोड़ की कमी है, इसके अतिरिक्त बच्चों को जन्म देने व गर्भ गिराने में प्रत्येक वर्ष 5 लाख महिलाएं मरती हैं।
- शक्ति के वितरण पर भी समानता का संकट नजर आता है। "Top down process of decision material".
- संयुक्त राष्ट्र संघ (यू.एन.ओ.) के अनुसार विश्व के 77 प्रतिशत लोग गरीब देशों में रहते हैं और वे कुल वैश्विक आय का मात्र 15 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त करते हैं।
- बॉध एवं विस्थापन– भाखड़ा बांध से 2180 परिवार, आंध्र के श्रीसेलम बांध से 1981 में 117 गांवों में रहने वाले एक लाख से अधिक लोग, उड़ीसा में रेगाली बांध से 50,000 लोग, सिंगरौली रिंहद से 50 हजार, बोकारो स्टील प्लांट से 12487 परिवारों तथा भिलाई स्टील प्लांट से 5703 परिवारों का विस्थापन।

इकाई–3

3.1 क्षेत्रीय विकास, क्षेत्रीय (प्रादेशिक) असन्तुलन, कृषि और नगरीय भूमि नीति।

3.2 आय का वितरण एवं सामाजिक नीति।

3.1 Area development, regional imbalances agriculture and urbanland,

Area Development: किसी भी राष्ट्र के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि प्रारम्भिक स्तर पर प्रत्येक राष्ट्र के पास संसाधन सीमित मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इस कारण प्रत्येक राष्ट्र प्रारम्भ में अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों में निवेश करना चाहता है। जहां प्रतिफल (आर्थिक आय) की दर ऊंची होती है। साथ ही इस कार्य हेतु प्रत्येक राष्ट्र ऐसे राज्यों का चयन करता है, जहां पर विकास को प्रारम्भिक स्तर पर प्रारम्भ किया जा सके एवं लाभ प्राप्त किया जा सके। तत्पश्चात् धीरे–धीरे विकास कार्य में गति आती है और विनियोग करने वाले क्षेत्रों का विकास किया जाता है तथा विभिन्न लाभों में वृद्धि की जाती है। इस प्रकार धीरे–धीरे एक राष्ट्र विकास की दौड़ में प्रत्येक राज्य को साथ ले लेता है।

किन्तु कभी–कभी ऐसा होता है कि कोई राज्य विकास की दौड़ में पिछड़ जाता है, इसका कारण राज्य में आर्थिक आय के साधनों की पर्याप्त विनियोजन की कमी या मानव शक्ति का भरपूर उपयोग न किया जाना अथवा दोनों ही हो सकते हैं। आर्थिक विकास की दौड़ में बना रहने के लिए ये राष्ट्र में अतिरिक्त विनियोग के रूप में आर्थिक पैकेज प्रदान करता है।

इस प्रकार आर्थिक विकास पाने के लिए प्रत्येक राष्ट्र अपने प्रत्येक राज्य का एवम् राज्य के प्रत्येक क्षेत्र का विकास करने की जो प्रक्रिया अपनाता है। उसे ही क्षेत्रीय नियोजन एवम् इस प्रक्रिया के फलस्वरूप होने वाले विकास को क्षेत्रीय विकास कहते हैं। क्षेत्रीय विकास के कार्यों के सम्पादन का दायित्व सम्बन्धित राज्य का होता है। राष्ट्र केवल आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

क्षेत्रीय विकास का अर्थ किसी क्षेत्र की क्षमताओं के अनुसार उनकी सम्भावनाओं का सम्पूर्ण विदोहन करता है ताकि सभी क्षेत्रों के निवासी समग्र आर्थिक प्रगति से लाभान्वित हो सकें अर्थात् आर्थिक रूप से जहां तक संभव हो सके वहां तक उद्योगों का पिछड़े लोगों के जीवन स्तर को बढ़ाकर उन्नत लोगों के जीवन स्तर तक ले जाना है। आज क्षेत्रीय विकास की धारणा पर इतना बल देने का मुख्य कारण साधनों का विकास एवम् संरक्षण, अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का विकास, राजनैतिक स्थिरता, देश की सुरक्षा रोजगार के अवसरों की उपलब्धता तथा सामाजिक क्षेत्रों का सुधार है।

क्षेत्रीय असन्तुलन– कुछ राज्य एवम् उनके कुछ क्षेत्र विकास की दौड़ में बहुत आगे निकल जाते हैं। जबकि कुछ राज्य एवम् कुछ क्षेत्र विकास की दौड़ से या तो बाहर हो जाते हैं या फिर बहुत अधिक पिछड़ जाते हैं। आर्थिक विकास की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में यह स्थिति क्षेत्रीय असन्तुलन कहलाती है।

विकास के दृष्टिकोण से दो राज्यों की स्थिति में परिवर्तन तथा प्रत्येक राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के दृष्टिकोण से अन्तर को ही क्षेत्रीय असन्तुलन कहा जाता है। राष्ट्र के नागरिक की आर्थिक स्थिति में भिन्नता, कृषि विकास में भिन्नता, औद्योगिक विकास की दर में भिन्नता, प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता एवम् उसके विदोहन में भिन्नता तथा सामाजिक सेवाओं के स्तर में भिन्नता क्षेत्रीय असन्तुलन के प्रमुख सूचक हैं।

भारत में क्षेत्रीय असन्तुलनः–

यद्यपि इस समय भारत सामाजिक–आर्थिक विकास की दौड़ में द्रुत गति से दौड़ रहा है। किन्तु यहां सभी राज्यों एवम् राज्यों के प्रत्येक क्षेत्र का समान विकास नहीं हुआ है। अर्थात् क्षेत्रीय असन्तुलन यहां भी व्याप्त है एवम् संतुलित नियोजन का या कहिए संतुलित विकास का अभाव है।

जनसंख्यात्मक दृष्टिकोण से भारत एक विशाल राष्ट्र है। जिसे कई राज्यों में व्यवस्थित किया गया है। कई राज्यों की जनसंख्या 1 करोड़ से भी बहुत नीचे है। तो कुछ राज्यों की जनसंख्या 15 करोड़ या उससे भी ऊपर है। तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाय तो उनके राज्यों की जनसंख्या कुछ राज्यों में 20 गुना तक अधिक है। जनसंख्यात्मक विवरण की इतनी बड़ी भिन्नता, भारत में क्षेत्रीय असन्तुलन का एक बड़ा एवम् प्रमुख कारण हो सकती है। छोटे राज्यों का विकास करना जितना सरल होता है। उतना ही कठिन होता है, बड़े राज्यों का विकास करना।

क्षेत्रीय असन्तुलन के सूचक : क्षेत्रीय असन्तुलन को मापने के अनेक सूचक हैं। कुछ प्रमुख सूचकों के आधार पर भारत में क्षेत्रीय असन्तुलन की स्थिति को समझा जा सकता है।

(1) निर्धनता रेखा– भारत की निर्धन जनसंख्या का लगभग तीन–चौथाई भाग यहां के 7 राज्यों आंध्रप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु एवं उत्तरप्रदेश में निवास करता है। इन राज्यों में निर्धनता की दर भी बहुत ऊंची है। यह केरल में 11.6 प्रतिशत, आंध्र प्रदेश में 11.8 प्रतिशत, तमिलनाडु में 16.6 प्रतिशत पायी गयी है। इसके विपरीत भारत के समृद्ध राज्यों पंजाब एवं हरियाणा में निर्धनता की दर क्रमशः 1.3 प्रतिशत एवं 1.2 प्रतिशत निर्धनता की दर का यह बड़ा अन्तर भारत में क्षेत्रीय असन्तुलन का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

(2) विनियोग एवम् वित्तीय सहायता में भिन्नता – क्षेत्रीय असन्तुलन का अध्ययन करने के उद्देश्य से भारत के 15 प्रमुख राज्यों का दो वर्गों में विभाजन किया गया है। उच्च पारिस्थितिकी वाले राज्य एवम् ख) पिछड़े हुये राज्य। मुख्यतः पंजाब, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक और केरल को उच्च पारिस्थितिकी वाले राज्यों में रखा गया है। एक अध्ययन के अनुसार भारत में विनियोग का लगभग 69 प्रतिशत भाग उन उच्च पारिस्थतकी वाले राज्यों में संकेन्द्रित हुआ, इसी प्रकार अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा 31 मार्च, 1997 तक वित्तीय सहायता का लगभग दो–तिहाई भाग उन्हीं उच्च प्रास्थिकी वाले राज्यों को दे दिया गया। राज्य वित्त नियमों ने सम्पूर्ण वित्तीय सहायता का 70 प्रतिशत भाग इन्हीं राज्यों को दे दिया गया। इसमें इन राज्यों का और अधिक विकास हो गया, जबकि पिछड़े राज्य और

अधिक पिछड़ गये। इस रूप में विभिन्न वित्तीय संस्थाओं एवम् निगमों द्वारा अनुदानित धनराशि के वितरण में भेदभाव क्षेत्रीय असन्तुलन का सूचक है।

(3) सिंचाई – जहां तक सिंचाई संबंधी सुविधाओं का प्रश्न है। उच्च प्रास्थितकी वाले दो राज्यों पंजाब एवं हरियाणा में कुल फसलीय भूमि का क्रमशः 94.8% एवं 77.2% भाग सिंचाई सुविधाओं के आधीन है तथा इन राज्यों में प्रति हेक्टेयर उत्पादकता भी अधिकतम है। इसके विपरीत पिछड़े हुए राज्य उत्तर प्रदेश की कुल फसलीय भूमि का एक बड़ा हिस्सा (62.6%) सिंचाई सुविधाओं के अधीन तो है, किन्तु इस प्रदेश की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता अत्यधिक है। कहने का तात्पर्य यह कि उत्तर प्रदेश में सिंचाई सुविधाओं की तो कमी नहीं है, किन्तु इनका समुचित उपयोग नहीं किया है।

(4) सामाजिक सेवा – सामाजिक सेवा के अन्तर्गत मुख्यतः साक्षरता दर, बाल मृत्युदर एवं जीवन प्रत्याक्षा को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक सेवा के क्षेत्र में जहां पुरूष साक्षरता दर 86.3 प्रतिशत है तथा स्त्री साक्षरता दर 67.5 प्रतिशत है। वहीं उत्तरप्रदेश में इसका प्रतिशत क्रमशः 70.2 व 43.0 है। पंजाब एवं महाराष्ट्र में जहां बाल मृत्युदर क्रमशः 51 एवं 47 प्रतिशत अनुमानित है। वहीं उत्तरप्रदेश एवं बिहार में ये दर 85 एवं 71 अनुमानित है। जहां तक जीवन प्रत्याशा का प्रश्न है। उसकी दर उच्च प्रास्थितिकी वाले राज्यों में पिछड़े राज्यों की तुलना में अधिक है। पंजाब में जीवन प्रत्याशा 56.8% हो गयी।

(5) औद्योगिक विकास – सन् 1968 में राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा औद्योगिक पिछड़ेपन की समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया। औद्योगिक पिछड़ेपन की समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया। औद्योगिक विकास की दृष्टि से पिछड़े राज्यों की पहचान करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् ने कुछ कसौटियो का निर्धारण किया। साथ ही परिषद् ने इस कार्य हेतु दो कार्यदलों का गठन किया इनमें से एक 'पाण्डेय कार्यदल' ने परिषद द्वारा निर्धारित कसौटियो के आधार पर औद्योगिक विकास की दृष्टि से पिछड़े कुछ राज्यों की पहचान की जिनमें मुख्य हैं। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, असम, बिहार, उड़ीसा एवं राजस्थान।

क्षेत्रीय असन्तुलन कोदूर करने के नीतिगत उपाय :–

भारतीय योजना आयोग ने भारत में व्याप्त क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करने के सम्बन्ध में तीन उपाय प्रस्तुत किए हैं।

(1) केन्द्र सरकार जब भी राज्यों का संसाधनों का आवन्टन करे, पिछड़ेपन के तथ्य को ध्यान पर रखे अर्थात पिछड़े राज्यों को अधिक संसाधनों का आवन्टन करें।

(2) पिछड़े हुए क्षेत्रों को विकास की प्रक्रिया के जोड़ने के लिये इन क्षेत्रों हेतु विकास कार्यक्रमों का निर्माण करे।

(3) निजी क्षेत्रों द्वारा किये जाने वाले विनियोग को पिछड़े क्षेत्रों में करने के लिए उद्यमियों को प्रोत्साहित करने के उपाय करना।

कृषि :–

भारत में कृषि क्षेत्र राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। अतः सर्वप्रथम इस क्षेत्र सम्बन्धी बातों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान

अन्य अल्पविकसित देशों की भांति भारत भी मूलरूप से एक कृषि प्रधान देश है। यहां के जीवन और अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान हर दृष्टि से बहुत ऊंचा व महत्वपूर्ण है। वस्तुत यहां की अर्थव्यवस्था कृषि पर टिकी हुई है।

राष्ट्रीय आय :–

देश के घरेलू उत्पादन में खेती का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। लगभग 27 प्रतिशत घरेलू उत्पाद खेती से प्राप्त होता है। आर्थिक विकास में तेजी आने के फलस्वरूप अन्य क्षेत्रों के अनुपात में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होने से खेती का प्रतिशत योगदान पिछले वर्षों में घट गया है और विकास की गति में तेजी आने से इसका सापेक्ष प्रतिशत भाग और घटेगा।

रोजगार व जीवन निर्वाह :–

राष्ट्रीय आय का इतना बड़ा भाग पैदा करने वाला यह क्षेत्र रोजगार और जीवन निर्वाह की दृष्टि से और अधिक महत्व पूर्ण है। खेती यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय है। बल्कि अन्य लोग कृषि पदार्थों के व्यापार से जीविका भी चलाते हैं।

पूँजी :–

देश की अधिकांश पूंजी खेती में लगी हुई है। स्थायी पूंजी की दृष्टि से कृषि स्रोतों का स्थान सबसे ऊँचा है। इसके अतिरिक्त देश की करोड़ों रूपये की पूंजी खेती की औजारों, सिंचाई के साधनों में लगी हुई है। इस प्रकार निवेशित पूंजी का स्थान भी कम नहीं है।

विदेश व्यापार :–

विदेश व्यापार की दृष्टि से भी हमारी खेती का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है, हमें खेती से निर्यात व्यापार की मुख्य मुख्य वस्तुएं प्राप्त होती हैं जो विदेशी मुद्रा के अर्जन में विशेष हाथ बंटाती है। अकेले चाय के निर्यात से हमें 2002–03 में 1652 करोड़ रूपये की विदेशी मुद्रा के अर्जन में वृद्धि हुई, अनेकों ऐसे उदाहरण चाय, तम्बाकू, चावल, कॉफी, काजू, मछली एवं इससे बने पदार्थ व मसालों का निर्यात।

उद्योग आन्तरिक व्यापार और परिवहन :–

साथ ही हमारी खेती देश के अनेक छोटे–बड़े उद्योग, आन्तरिक व्यापार और परिवहन का आधार भी है। पटसन, चीनी, वस्त्र, तेल आदि अनेक महत्वपूर्ण उद्योग अपने कच्चे माल के लिए मुख्यतः देश की खेती पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त देश के लोगों के

बजट का आधे से अधिक भाग अनाज व अन्य कृषि पदार्थों पर खर्च होता है। फलस्वरूप कृषि जन्य पदार्थों के सम्बन्ध में शहर व देहात की मण्डियों में होने वाला व्यापार आन्तरिक व्यापार का बहुत बड़ा भाग ठहरता है।

सरकारी बजट :–

सरकार के बजट अथवा सरकारी आय और व्यय पर भी कृषि का विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है। केवल माल गुजारी से सरकार को करीब 1150 करोड़ रूपये की वार्षिक आय होती है। कृषि आयकर व्यापक रूप से नहीं लगाया गया है। फिर भी इससे 200 करोड़ रूपये की वार्षिक आय प्राप्त होती है। इसी प्रकार सरकारी आय का काफी बड़ा भाग कृषि क्षेत्र संबंधी बातों पर खर्च होता है। काराधान, ऋण तथा तथ्य संबंधी नीतियों का निर्धारण मुख्य रूप से कृषि उत्पादन की मात्रा के आधार पर किया जाता है। कृषि प्रधान देश में सरकारी बजट का कृषि क्षेत्र से इस महत्वपूर्ण सीमा तक प्रभावित होना स्वाभाविक है।

मुख्य विशेषताएं :–

- प्रकृति संबंधी अनिश्चितायें
- फसलों की विविधता
- अर्ध व्यापारिक खेती
- छोटे किसानों की प्रमुखता
- भारी असमानताएं
- उत्पादकता का निम्न स्तर
- व्यापक अल्प रोजगार

कृषि विकास के लिए उपाय :–

देश में कृषि विकास के लिए तरह–तरह के सुझाव दिये जाते हैं। पिछड़ी खेती के कारणों की भांति कृषि विकास के उपायों को भी मोटे तौर पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– (1) संस्थागत उपाय, (2) तकनीकी उपाय।

कुछ लोग संस्थागत उपायों जैसे कि भूमि सुधार पर अधिक बल देते हैं और कुछ तकनीकों उपायों जैसे बीज खाद, संबंध, खाद उर्वरक, कृषि उपकरण आदि की व्यवस्था पर।

वास्तव में ये दोनों प्रकार एक–दूसरे के पूरक है और कृषि विकास के लिए दोनों का सहारा लिया जाना आवश्यक है। संस्थागत सुधार के बिना तकनीकी सुधार लाने के लिए रूपया लगाने एवं कड़ी मेहनत से काम करने की प्रेरणा न मिल सकेगी। फलस्वरूप तकनीकी सुधार भली प्रकार लाये ना जा सकेंगे और खेती पिछड़ी ही रहेगी। लेकिन संस्थागत सुधार कार्यक्रम को अपनाने आप में पूर्ण पर्याप्त नहीं है। जब तक खाद, बीज, पानी व खेती की तकनीक आदि के संबंध में सुधार नहीं लाए जायेंगे तब तक उत्पादिता

का स्तर नीचा रहेगा और कृषि विकास का कार्य आगे न बढ़ सकेगा, अतः कृषि के विकास के लिए दोनों प्रकार के सुधारों की ओर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

भूमि नीति (Lord Policy)

नगर आयोजन के सम्बन्ध में सबसे बड़ी समस्या भूमि ही है, इसके बिना किसी भी मास्टर प्लान को क्रियान्वित नहीं किया जा सकता। पर्याप्त अधिनियम के अभाव में किसी योजना को लागू करने में अनेक कठिनाइयां होती है। इसके लिए निम्न प्रकार की व्यवस्थाओं का होना आवश्यक है।

मास्टर प्लान को लागू करने में सार्वजनिक उद्देश्य के हेतु भूमि को सुरक्षित करने का अधिकार, नगरीय विकास कार्य में लगे अधिकारियों के पास जमीन को उचित मूल्य पर लेने का अधिकार, भूमि के अधिग्रहण से सम्बन्धित अधिनियमों में पर्याप्त संशोधन, तथा नगरीय विकास की धनराशि के उचित उपयोग पर पर्याप्त नियंत्रण।

आर्थिक विकास के फलस्वरूप देश में नगरीकरण का निरन्तर प्रसार हो रहा है, नगरीय क्षेत्रों का जनसंख्या बराबर बढ़ती जा रही है। इसके साथ ही नगरीय समस्याएं भी बराबर बढ़ती जा रही है। सन 1971 तक देश की 11 प्रतिशत जनसंख्या का यह प्रतिशत 23 हो जायेगा। अतः नगरीय तथा क्षेत्रीय विकास को महत्व देना नितान्त आवश्यक है। तीसरी योजना में नगरीय तथा क्षेत्रीय विकास के लिए योजनाएं तैयार करने का कार्य आरम्भ हुआ। चौथी योजना में सर्वप्रथम तृतीय योजना के कार्यों को पूरा करने की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त 52 प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के नगरों व 49 तीर्थ स्थानों व पर्यटक स्थलों के विकास की योजना बनाने का भी कार्यक्रम है। चौथी योजना में नगरीय तथा क्षेत्रीय विकास के लिए कुल 28 करोड़ रूपए की व्यवस्था की गई है।

3.2 आय का वितरण :–

देश के संबंध में मूल समस्या निम्न आय की है, इन देशों में आर्थिक क्रियाओं की सीमितता तथा निम्न उत्पादकता के कारण उत्पादन बहुत कम होता है। परिणामतः आय की मात्रा थोड़ी पाई जाती है।

सम्पूर्ण आय का बहुत बड़ा भाग केवल गिने चुने व्यक्तियों के हाथ में होता है। जबकि जनसंख्या के बहुत बड़े भाग के पास आय का अल्पभाग होता है। इस प्रकार आय संबंधी विषमता पाये जाने के मूलभूत दो कारण हैं–

(1) देश में जो थोड़े व्यक्ति हैं, उनके पास पूंजी साधन पर्याप्त रूप से है तथा पूंजी के आधार पर अपनी आय की मात्रा को बढ़ते जाते हैं, ये व्यक्ति पूंजीपति होते हैं।

(2) देश की जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा निम्न आय वाले व्यक्तियों का होता है। उनकी आय स्तर में कोई तेजी से सुधार नहीं हो पाता क्योंकि न तोमजदूरी दर में ही कोई विशेष वृद्धि होती है और न ही सरकार द्वारा उनके कल्याण संबंधी कोई व्यापक प्रयास किये जाते हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आ सके। अतः आय का वितरण इन्हीं सब कारणों से आवश्यक है।

विकसित एवं अर्द्धविकसित देशों में आय का वितरण

देश	राष्ट्रीय आय में अमीर वर्ग का 20 प्रतिशत	राष्ट्रीय आय में अमीर वर्ग का 60 प्रतिशत
विकसित देश		
संयुक्त राज्य	44	34
अमेरिका	45	35
अर्द्धविकसित देश		
भारत	55	28
श्रीलंका	60	30

विकसित देशों की तुलना में अर्द्धविकसित देशों में आय के वितरण की गम्भीर समस्या पाई जाती है। आर्थिक विकास तथा आय का गहरा संबंध है। आर्थिक विकास में वृद्धि के साथ–साथ आय में वृद्धि होती है। किन्तु जो मूल बात है वह यह है कि बुद्धिगत आय का समाज के सभी वर्गों के बीच न्यायोचित वितरण हो। यदि बढ़ी हुई आय का देश की जनसंख्या के बीच न्यायपूर्ण ढंग से वितरण नहीं होता है। तो आर्थिक विकास संभव नहीं है। विशेष रूप से समाजवादी विचारधारा वाले देशों में यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि आर्थिक विकास का लाभ सामाजिक कल्याण वृद्धि के लिए मिलना चाहिए। प्रो. साइमन कुजनेट्स का यह तर्क उचित है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में आय का वितरण संबंधी विषमता है, बढ़ती है, क्योंकि इस स्थिति में उत्पादको व व्यापारियों द्वारा अधिक से अधिक लाभ कमाया जाता है, उनके लाभ की निरन्तर मात्रा बढ़ती जाती है। इससे देश की जनसंख्या के केवल अल्प भाग को ही विकास का लाभ मिल पाता है, जबकि अधिकांश भाग इससे वंचित रह जाता है। इसी से आय के वितरण की समस्या गम्भीर हो जाती है। प्रो. रोजस्टीन का यह कथन उपयुक्त है कि सम्पत्ति एवं आय की कुल राशि से अधिक महत्व इसके वितरण का है। इसमें कोई संदेश नहीं है कि आज से प्रायः 150 वर्ष पूर्व पुरानी औद्योगिक क्रांति एक तकनीकी प्रगति के बावजूद विभिन्न देशों के बीच आय के वितरण की विषमता की मात्रा में वृद्धि हुई है। आज आर्थिक विकास का औचित्य इसी बात में माना जाता है कि उसका लाभ समाज के कमजोर वर्ग के लोगों तथा निर्धन लोगों को प्राप्त होना चाहिए, आर्थिक विकास के फलस्वरूप आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण आय का वितरण जनसंख्या के बीच न्यायोचित रूप से होना चाहिए ताकि उसका लाभ समाज के विभिन्न वर्गों को एक समान प्राप्त हो सके।

आय के वितरण की सामाजिक नीति :–

देश में धन व आय वितरण की यह स्थिति निस्संदेह बहुत असंतोष जनक एवं अनुसूचित है और इसमें सुधार लाया जाना हर दृष्टि से आवश्यक तथा वांछनीय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय सरकार ने इस बात को स्पष्ट स्वीकार किया कि राष्ट्रीय आय में तेजी से वृद्धि लाने के साथ–साथ असमानताओं को घटाना भी आवश्यक है, देश के विकास के लिये अपनाये गये आर्थिक आयोजन में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि केवल राष्ट्र की आय में वृद्धि लाना ही पर्याप्त न होगा, बल्कि साथ में हमें न्याय संगत ढंग से राष्ट्रीय आय के वितरण की दिशा में भी आगे बढ़ना होगा, समाजवादी समाज की स्थापना के लिये जो कि हमारा मूल्य उद्देश्य है, ऐसा किया जाना अपरिह्याय है, समाजवादी समाज का इस प्रकार कि भारी असमानताओं के साथ मेल नहीं बैठता, अतः हर

पंचवर्षीय योजना में आप व धन की असमानताओं में कमी लाने तथा आर्थिक शक्ति का पहले से अधिक समान वितरण के उद्देश्य को सामने रखा गया है और इसे विशेष स्थान दिया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के Time से राष्ट्रीय सरकार के अनेक आर्थिक निर्णय ऐसे हैं जो कम अधिक सीमा तक असमानताओं की कमी लाने के उद्देश्य से लिये गये हैं, इनमें से कुछ मुख्य इस प्रकार हैं–

एक तो सार्वजनकि क्षेत्र का विस्तार वैसे तो इस नीति को अपनाने में अनेक बातों का हाथ रहा है, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसका मुख्य उद्देश्य एक असमानताओं में कमी लाना रहा है, सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार से निजी लोगों के हाथ में धन व आय के केन्द्रीकरण को रोकने और इस प्रकार समानता को बढ़ाने में मदद मिलती है।

दूसरे छोटे पैमाने के उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति को अन्य बातों के अतिरिक्त इस दृष्टि से अपनाया गया है कि इससे आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण को रोकने व कम करने में मदद मिलेगी, साथ ही इस नीति के फलस्वरूप उद्योग क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, जिससे कृषि क्षेत्र से जो एक निम्न उत्पादिता का क्षेत्र है अधिक संख्या में श्रमिक को हटा कर उद्योग क्षेत्र में लगाना संभव रहेगा। जहां समान तौर पर उत्पादिता का स्तर अपेक्षाकृत ऊंचा होता है। इस प्रकार निम्न आय वर्ग के लोगों की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी, उनकी आय में वृद्धि होगी और फलस्वरूप असमानता घटेगी, कुटीर उद्योगों के विस्तार पर जोर देने का भी यही मुख्य उद्देश्य है, इससे निम्न आय वर्ग के लोगों को अपनी आय में वृद्धि लाने के लिये साधन मिल सकेगा।

तीसरे भूमि सुधार संबंधी नीति का भी प्रधान उद्देश्य भूमि स्वामित्व की असमानता में कमी लाना तथा आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण को घटाना है, भूमि सुधार कार्यक्रम में आशा की जाती है कि इसके द्वारा अपेक्षाकृत अधिक निर्धन वर्गों की आय तेजी से बढ़ेगी व सम्पन्न वर्गों की खेती से प्राप्त होने वाली आय घटेगी, इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में समानता की प्रवृत्ति को बल मिलेगा।

चौथे भारी कराधान द्वारा पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि लाने की नीति की काफी बड़ी सीमा तक इस बात को लेकर अपनाई गई है कि इससे संपन्न वर्ग से निर्धन वर्ग की ओर आय का अंतरण हो सकेगा और फिर आय अंतरण के ध्यैय की पूर्ति के लिये स्वास्थ्य शिक्षा संबंधी सुविधाओं तथा अन्य अनेक कल्याणकारी क्रियाओं में अधिकाधिक विस्तार लाने की नीति को भी अपनाया गया है, इस तरह के अनेक उपायों द्वारा देश में आय व धन वितरण की असमानताओं को कम करने की व्यवस्था की गयी, साथ ही आज कल राष्ट्र न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने तथा संपत्ति व आय की सीमा बंदी के सिलसिले में कदम उठाये जाने लगे हैं।

इकाई–4

4.1 विकास में चुनिंदा विकास की भूमिका

4.2 विकास नियोजन एवं संविधान केन्द्र एवं राज्य सम्बन्ध

4.3 योजना आयोग एवं योजना की प्रक्रिया

4.1 विकास में चुनिंदा विकास की भूमिका (Role of Elected bodies in development)

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना को क्रियान्वित करने के लिए पंचायतराज का संगठन मेहता समिति द्वारा आवश्यक साधन के रूप में प्रस्तावित किया गया। पंचायतराज का ढांचा वृितीय संस्थान के रूप में स्वीकार किया गया।

थ्री–टियर सिस्टम निम्न प्रकार था–

1. पंचायतें

2. पंचायत समितियां

3. जिला परिषदें

1. ग्राम पंचायत :

प्रत्येक गांव की युवती व युवा स्त्री–पुरूष उस गांव की 'सभा' (ग्राम सभा) के सदस्य होते हैं। आसपास के कई छोटे–छोटे गांव व मुहल्ले को मिलाकर पंचायत या चुनाव ग्राम सभा के सदस्यों द्वारा किया जाता है। चुनाव प्रणाली अलग–अलग दो राज्यों में भिन्न–भिन्न होती है। पंचों की संख्या 5–31 तक रखी गई है, जिन्हें अधिकतर राज्यों में गोपनीय प्रणाली द्वारा चुना जाता है। पंचों में सरपंच का चुनाव कहीं सीधे लोगों द्वारा या कहीं पर पंचों के द्वारा किया जाता है। कहीं–कहीं पर पंचायत के कुछ सदस्य निर्वाचित किये जाते हैं। कहीं–कहीं पर कुछ सरपंच द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। एक पंचायत में दो महिला सदस्यों का होना अनिवार्य है। हर पंचायत में अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों को समुचित प्रतिनिधित्व मिलना आवश्यक है।

ग्राम पंचायतों में सदस्य संख्या आबादी के अनुसार होती है।

जनसंख्या 1,000 से अधिक न होने पर पंचों की सक्षम संख्या 15 होती है।

जनसंख्या 1000 से 2000 के बीच हो तो 20 होती है।

जनसंख्या 2000 से 3000 के बीच हो तो 25 होती है।

जनसंख्या 3000 से अधिक हो तो 30–31 तक बढ़ाई जा सकती है।

पंचायतो के समस्त कार्यों को मुख्यतः 2 भागों में बांटा जा सकता है।

पहला नागरिक सुरक्षा एवं दूसरा विकास संबंधी।

1. नागरिक सुरक्षा (अ) वाटर सप्लाई, परिवहन के मार्गों, नालियां, तालाबों आदि की सफाई व दुरूस्ती।

(ब) गांव व सड़कों में रोशनी का प्रबंध, भूमि का इन्तजाम, मवेशियों के आंकड़े, अकाल पीड़ितो की सहायता, सड़क की रक्षा, पिछड़ी जाति के लोगों के हितों की रक्षा, आंकड़ों की प्रस्तुति आदि अनेक कार्य आते हैं।

2. विकास संबंधी कार्य : विकास सम्बन्धी कार्य में पंचायतें विकास खण्ड के कार्यों में सहयोग देने के लिए पंचायत समिति के एजेन्ट के रूप में कार्य करती हैं। अपनी स्वयं की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पंचायतों के लिए अनेक आय के स्त्रोतों को प्रस्तावित किया गया है, जिसमें जमीनों के लगान की वसूली पर कमीशन और एक खास हिस्सा, सम्पत्ति और मकानों पर कर, बाजार, हाट, मेला सवारियों और सामान ढोने वाली गाड़ियों, नावों पर कर लगाना मुख्य है। इन पंचायतों का कार्यकाल 3 वर्ष का है।

2. पंचायत समितियां :–

मेहता समिति की रिपोर्ट के अनुसार पंचायत समिति का कार्यक्षेत्र वही होगा जो एक विकासखण्ड का होगा।

संगठन :–

ग्राम समितियों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से ग्राम पंचायत के सदस्यों द्वारा किया जाता है। प्रत्येक समिति में दो महिला सदस्यों का होना तथा यदि उस क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की आबादी 5 प्रतिशत से अधिक हो तो कम से कम एक सदस्य उनमें भी लिया जाना आवश्यक है। इसके अलावा उस क्षेत्र के 1 सहकारी समितियों के प्रतिनिधि 2, छोटी 2 नगर पालिकाओं के प्रतिनिधि अधिकांश राज्यों में विधानसभा के सदस्यों को मतदान का अधिकार नहीं दिया गया।

कार्यक्षेत्र :–

पंचायत राज के थ्री टियर सिस्टम में पंचायत समिति का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इसके निम्न कार्य हैं–

1. विकास खण्ड में पंचायतों के माध्यम से राष्ट्रीय विकास योजना के क्रियान्वयन में जनता का सहयोग इन्हीं समितियों के माध्यम से होता है।

2. समितियों के द्वारा ही पंचवर्षीय योजनाओं को सक्रियता मिली यह अपने से नीचे की पंचायतों का निरीक्षण भी करता है।

3. आर्थिक व्यवस्था के लिए अनेक मतें हैं, जैसे– उस क्षेत्र की लगान की वसूली में हिस्सा, पेशों पर टेक्स, अचल सम्पत्ति के परिवर्तन पर टैक्स, सम्पत्ति के क्रय–विक्रय पर कर मनोरंजन तीर्थयात्रा व मेला आदि में एक निश्चित दर की वसूली।

3. जिला परिषदें :–

जिला परिषदें पंचायती राज व्यवस्था का शीर्षस्थ निकाय है। मोटे तौर पर जिला परिषदों में निम्नलिखित सदस्य होते हैं। जिले की पंचायत समितियों के अध्यक्ष, जिले के सभी निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले संसद सदस्य, जिले के सभी निर्वाचन क्षेत्रों से निर्वाचित विधान मण्डल के सदस्य, सहकारी समितियों का एक प्रतिनिधि जिला सहकारी समिति का अध्यक्ष एक निश्चित संख्या में परिगणित जातियों व परिगणित जनजातियों के सदस्य कुछ सहयोजित सदस्य जिन्हें प्रशासन, सार्वजनिक जीवन अथवा ग्राम विकास का अनुभव हो। यह संस्था सरकारी निकाय है क्योंकि पदेन व सहयोगी सदस्यों की संख्या इसमें अधिक है।

कार्यकाल :–

जिला परिषदों का कार्यकाल 8–5 वर्ष का हो सकता है।

कार्य :–

1. वह पंचायत समितियों की बजटों का परीक्षण तथा अनुमोदन करती है।

2. समितियों द्वारा तैयार की गई योजनाओं का समन्वय करती है।

3. समितियों को कुशलता पूर्वक कार्य करने के सम्बन्ध में निर्देश जारी करती है।

4. राज्य सरकार को जिले के मामलों को विकासात्मक कार्य की सलाह देती है। वह जिले के स्थानीय निकायों के कार्यकलाप के सम्बन्ध के आंकड़े प्रस्तुत करती हैं।

नगरीय प्रशासन :–

नगरीय प्रशासन स्थानीय शासन का शीर्षस्थ निकाय है भारत में नगरीय स्थानीय शासन की तरह सोषातमक नहीं है। नगर निगम संस्था के रूप में अधिक सम्मानीय है और अधिक स्वायत्तता का उपयोग करता है।

नगर निगम :–

नगर निगम पद्धति बड़े नगरों के लिए हैं। जहां नागरिक समस्याएं अधिक जटिल हो जाती है। नगर निगम भी राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित विधि के अन्तर्गत होता है। निगम जनसंख्या व साधनों की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होते हैं। एक ओर के नगर निगम है तो दूसरी ओर 2 लाख से कम जनसंख्या वाले निगम। इसी प्रकार राजस्व की दृष्टि से कुछ निगमों की वार्षिक आय एक करोड़ से भी अधिक है और कुछ की 50 लाख से भी कम जिन नगरों को मा न्यूनतम वित्तीय लाभ उपलब्ध नहीं है उनसे कार्य कुशलता की आशा नहीं की जा सकती है। ग्रामीण नगरीय समन्वय समिति ने अनुशंसा की थी कि उन नगरों में ही नगर निगम स्थापित किए जाये जिनकी जनसंख्या 5 लाख से और वार्षिक आय 1 करोड़ से अधिक न हो। अतः नगर निगम की स्थापना हेतु निम्न सिद्धांत निर्धारित हैं–

1. घना बसा हुआ क्षेत्र

2. नगर पालिका की वित्तीय स्थिति

3. जनता के बढ़े हुए करों को वहन करने की क्षमता

4. नगर निगम के पक्ष में लोकमत

नगर निगम का संगठन :–

नगर निगम में निम्न घटक होते हैं।

1. परिषद

2. महापौर

3. समितियां

4. नगर आयुक्त

1. परिषद– इसकी शक्तियां इतनी व्यापक होती है कि इसे ही नगर निगम माना जाता है। परिषद स्थानीय विधानसभा के रूप में होती है। जो अपनी इच्छा प्रकट करती है और वह नगरीय कानून का रूप धारण कर लेती है। परिषद में नगर के चुने हुए सदस्य पार्षद कहलाते हैं। वयस्क मताधिकार के माध्यम से चुनाव होता है, उनका कार्यकाल 3–5 वर्ष होता है।

2. महापौर– नगर निगम की कार्यपालिका शक्तियां महापौर में होंगी। मेयर का चुनाव निगम के निर्वाचित पार्षदों और नगरबद्धों द्वारा उन्हीं में से एक वर्ष के लिए चुनाव जाता है। अगर पार्षद चाहे तो अगले वर्ष उसी व्यक्ति को 'मेयर' बना सकता है। मेयर का चुनाव में हर राज्य में एक जैसी व्यवस्था नहीं है। उ.प्र. में मेयर को परिषद का सदस्य होना अनिवार्य नहीं है।

यद्यपि मेयर निगम का अध्यक्ष होता है और निगम में कार्य शक्तियां उसे सौंपी जाती है, तथापि अपनी कुछ परिस्थितियों के कारण मेयर वास्तविक कार्यपालिका नहीं है।

3. समितियां– जिन कारणों से केन्द्रीय एवं राज्य व्यवस्थापिका को विभिन्न कार्यों की देखभाल के लिए अपने सदस्यों की समितियां बनानी पड़ती हैं, वे कारण स्थानीय स्तर पर विद्यमान रहते हैं, नगर निगम परिषद की बैठक महीने में एक या दो बार से अधिक नहीं हो पाती है। अतः नगर निगम के लिए वह संभव नहीं होता है कि वह स्वयं कार्य कर सके। परिषद लोकतंत्रीय पद्धति के अनुरूप अपनी नीतियों के सफल संचालन और क्रियान्वयन के पर्यवेक्षक के लिए कुछ समितियों का गठन करती है। परिषदों द्वारा नियुक्त समितियां दो प्रकार की होती हैं– 1. संविधिक समितियां, 2. गैर संविधिक समितियां।

1. संविधिक समितियां– वे समितियां है जिनकी रचना नगर निगम के निर्माण की संविधि के द्वारा ही रचना की जाती है। इसका उल्लेख अधिनियम के अन्तर्गत ही होता है। जैसे–

मध्यप्रदेश नगर निगम अधिनियम में सर्व उद्देशीय स्थाई समिति की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त 7 विशेष उद्देशीय समितियां हैं।

2. गैर संविधिक समितियां– इन समितियों का गठन परिषद द्वारा अपने उपस्थिति के आधार पर की जाती है। परिषद अपने कार्यों के सफल क्रियान्वयन के लिए इसकी स्थापना करता है।

3. नगर आयुक्त– नगर आयुक्त निगम का मुख्य अधिकारी होता है। वास्तव में उसे नगर का प्रमुख प्रशासनिक कार्यकर्ता समझा जाता है। वे उन समस्त कार्यों को करता है जो अधिनियम द्वारा उसे सौंपे जाते हैं। संकट काल में वह कोई भी ऐसा कार्य कर सकता है, जो उसे उचित लगे। नगर परिषद की नीतियों को और संविधि के प्रावधानों को क्रियान्वित करना नगर आयुक्त का उत्तरदायित्व है।

नियुक्ति– नगर आयुक्त की नियुक्ति राज्य लोक सेवा आयोग के परामर्श से राज्य सरकार द्वारा की जाती है। वह उच्च स्तर का पेशेवर प्रशासक होता है। जिसे नगर का प्रशासन करने राज्य सरकार नियुक्ति करती है। अपना वेतन नगर निगम से प्राप्त करता है। इसका कार्यकाल भिन्न–भिन्न नगरों में भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है।

कार्य– सभी नगर निगमों के कार्य दो प्रकार के होते हैं– 1. वाह्यकारी कार्य तथा 2. ऐच्छिक कार्य।

5. नगर पालिकाएं– नगरीय प्रशासन में जैसे महानगरों में नगर निगम होते हैं, वैसे ही नगर पालिकाएं भी होती हैं। आमतौर पर 50 हजार से कम आबादी वाले क्षेत्रों में नगर पालिकाएं भी होती हैं।

संगठन व कार्यकाल :–

नगर पालिका जनता की सभा है, जो नगरपालिका अधिनियम द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर नियमों, उपनियमों का निर्माण करती है। प्रत्येक नगरपालिका एक परिषद होती है। जो बयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित सदस्य होते हैं। परिषद के पास सर्वोच्च सत्ता होती है। भिन्न–भिन्न राज्यों के नगर पालिकाओं का संगठन भिन्न–भिन्न राज्यों के नगर पालिकाओं का संगठन भिन्न–भिन्न होता है।

निर्वाचन– चुनाव के लिए कस्बों या नगर को वार्डो ने विभाजित किया जाता है। प्रत्येक वार्ड से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। सीटों व वार्डों का निर्धारण राज्य सरकार की विज्ञप्ति के आधार पर होता है। इसमें अनुसूचित जाति व जनजाति को भी प्रतिनिधित्व दिया जाता है। एक व्यक्ति एक ही वार्ड से खड़ा हो सकता है।

पदावधि– नगर पालिकाओं का कार्यकाल सामान्यतः 3 वर्ष का होता है। परन्तु राज्य सरकार शासकीय गजट से आज्ञा में प्रकाशित करके किसी नगरपालिका की अवधि 2 वर्ष तक के लिए बढ़ा सकती है। वह किसी नगर पालिका को भंग करके प्रशासक नियुक्त कर सकता है।

पद की शपथ व त्यागपत्र– अधिनियम के अनुसार नगरपालिका के प्रत्येक सदस्य को अपने कर्तव्यों को सम्हालने के पूर्व जिलाधीश अथवा सरकार द्वारा मनोनीत किसी भी व्यक्ति के समक्ष निर्धारित प्रपत्र में शपथ लेनी पड़ती है और उस पर अपने हस्ताक्षर करने होते हैं यदि कोई सदस्य प्रथम बैठक की तिथि से 3 मास तक शपथ ग्रहण नहीं करता है तो उसका स्थान रिक्त समझा जायेगा। कोई भी सदस्य लिखित रूप से अपनी सदस्यता से त्यागपत्र दे सकता है।

कार्य – नगर पालिका के कार्यों को भी 2 भागों में विभाजित किया जाता है।

1. प्राथमिक कार्य

2. विशेष कार्य

एक्ट की धारा 98 के अनुसार प्राथमिक कार्य निम्न हैं–

1. सार्वजनिक स्थानों व भवनों में प्रकाश की व्यवस्था करना।

2. सार्वजनिक मांगों व स्थानों पर जल छिड़काना।

3. हानिकारक वनस्पति को हटाना और सार्वजनिक अनुज्ञा से काम करना।

4. आग बुझाना, आग से नागरिकों के जानमाल की रक्षा करना।

5. सार्वजनिक गलियों, बाजारों, नालियों, स्नानघर, बूचड़खाना, तालाबों, कुंओं, धोने के स्थान आदि का निर्माण करना।

6. सार्वजनिक शौचालयों व मूत्रालयों का प्रबंध करना।

7. खतरनाक भवनों को सुरक्षित करना या हटाना। अस्वस्थ्यकर बस्तियों का उद्धार करना।

8. जन्म मरण का हिसाब रखना।

9. श्मशान की व्यवस्था करना।

10. अनाथों असहायों के निवास का उचित प्रबंध करना।

11. सार्वजनिक टीकों का प्रबंध करना।

12. पागल कुत्तों के पकड़ने और ऐसे कुत्तों द्वारा काटे गये लोगों की चिकित्सा का प्रबंध करना।

13. माल व कूड़े करकट का मिश्रित खाद तैयार करना।

विशेष कार्य :–

1. भयंकर बीमारी की अवस्था में विशेष चिकित्सा की व्यवस्था करना।

2. अकाल व अतिवृष्टि के समय असहाय लोगों की सहायता करना।

ऐच्छिक कार्य :–

1. नयी सड़कों या गलियों का निर्माण करना तथा सड़कों के किनारे पर वृक्ष लगवाना।

2. सार्वजनिक पार्कों, पुस्तकालयों, अजायब घरों, धर्मशालाओं, विश्राम गृहों का निर्माण एवं प्रबंध।

3. गंदी बस्तियों को समाप्त करना, ऐसे कार्य करना जो जनता के स्वास्थ्य, शिक्षा के लिए आवश्यक हो।

4. पशुघरों की स्थापना करना।

5. सार्वजनिक समारोहों की व्यवस्था करना।

4.2 विकास नियोजन एवं संविधान केन्द्र एवं राज्य सम्बन्ध

विकास के लिए नियोजन :–

नियोजन की अवधारणा प्राचीन है विभिन्न समाजों में विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार एवं विभिन्न कार्यों में इसका प्रयोग किया गया है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विभिन्न राष्ट्रों के पुनर्निर्माण के लिए पूंजीवाद के दोषों को दूर करने हुये विकासशील राष्ट्रों की तीव्र विकास की आवश्यकता आदि से तत्व है जिनके आयोजन के विचार को प्रोत्साहित किया।

जेम्स.एस. कोलमैन के अनुसार– ''नियोजन एक संगठित बौद्धिक प्रयास है, जिसके लिए विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बेहतर विकल्पों का चयन किया जाता है।''

जवाहर लाल नेहरू के अनुसार– ''नियोजन एक बौद्धिक अभ्यास है, जिसके अन्तर्गत तथ्यों एवं दशाओं को अनेक वास्तविक रूप में आंकलन के द्वारा समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त किया जाता है।''

बारबरा ऊटंन के अनुसार–''नियोजन का अर्थ सार्वजनिक सत्ता के द्वारा विचार पूर्वक तथा जान–बूझकर आर्थिक प्राथमिकताओं के बीच चुनाव करना है।''

विकास नियोजन राज्य की एक संगठित क्रियाशीलता के रूप में देखी या परिभाषित की जा सकती है। जिसमें अपने नागरिकों को बेहतर जीवन यापन करने हेतु सामाजिक, आर्थिक वृद्धिदर को उन्नत किया जाय। नियोजन के अन्तर्गत उन संस्थागत व्यवस्थाओं को परिवर्तित करने का प्रयास किया जाता है जो उन उद्देश्यों की प्राप्ति में अवरोध उत्पन्न करते हैं। विकास नियोजन का उद्देश्य होता है, अभिवृद्धि एवं संरचनात्मक परिवर्तन बढ़ती हुई आर्थिक अभिवृद्धि एवं संरचनात्मक परिवर्तन नियोजक के दो मुख्य लक्ष्य होते हैं।

विकास नियोजन मुख्य विचार बिन्दु निम्न प्रकार से हो सकते हैं–

1. अर्थव्यवस्था सम्बन्धी –राष्ट्रीय आय में वृद्धि उद्योग एवं कृषि में निवेशद्वारा किया जाय।

2. आवास, भोजन, गरीबी में कमी, रोजगार वृद्धि, जनसंख्या नियंत्रण, स्वास्थ्य, शिक्षा, बच्चों का विकास, महिलाओं का विकास, पर्यावरण ऊर्जा, जल जंगल, जमीन, पर्यटन, आपदा प्रबन्धन आदि।

अतः सभी मुद्दों को विकास आयोजन में सम्मिलित करना आवश्यक है।

संविधान का दर्शन– प्रत्येक संविधान का अपना एक दर्शन होता है। हमारे संविधान के पीछे जो दर्शन है उसके लिए हमें पंडित नेहरू के उस ऐतिहासिक उद्देश्य–संकलन की ओर दृष्टिपात करना होगा जो संविधान सभा ने 22 जनवरी 1947 को अंगीकार किया था और जिससे आगे के सभी चरणों में संविधान को रूप देने में प्रेरणा मिली है। यह संकलन इस प्रकार है–

1. संविधान सभा भारत को स्वतंत्र प्रभुत्व संपन्न गणराज्य के रूप में घोषित करने के अपने दृढ़ और सत्यनिष्ठ संकल्प की ओर भारत में भावी शासन के लिए संविधान बनाने की घोषणा करती है।

2. जिसमें उन राज्य क्षेत्रों का जो ब्रिटिश भारत में समाविष्ट है, उन राज्यक्षेत्रों का जो अभी देशी रियासतों के भाग हैं और भारत के उन अन्य भागों का जो अभी भारत के बाहर हैं और ऐसी रियासतों का तथा ऐसे अन्य राज्य क्षेत्रों का जो स्वतंत्र प्रभुत्व संपन्न भारत के भाग बनने के लिए सहमत हैं, मिलकर एक संघ बनेगा और

3. उक्त राज्य क्षेत्र अपनी वर्तमान सीमाओं से या ऐसी सीमाओं से जो संविधान सभा द्वारा या उसके पश्चात् सांविधानिक विधि के अनुसार अवधारित की जाए, स्वायत्त इकाईयों की प्रास्थिति रखेंगे और बने रहेंगे। उन्हें अवशिष्ट शक्तियां होंगी और वे सरकार और प्रशासन की सभी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग करेंगे, केवल ऐसी शक्तियों और कृत्यों को छोड़कर जो संघ में निहित या संघको समनुदिष्ट है या जो संघ में अन्तर्निहित या उसके परिणामस्वरूप है, और

4. प्रभुत्व संपन्न स्वतंत्र भारत की सभी शक्तियां और प्राधिकार उसके संघटन भाग पुन और शासन के सभी अंग लोक से व्युत्पन्न है, और

5. भारत की जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, प्रतिष्ठा और अवसर की तथा विधि के समक्ष समता, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, व्यवसाय, संगम और कार्य की स्वतंत्रता विधि और सदाचार के अधीन रहते हुए होगी, और

6. अल्पसंख्यकों के लिए पिछड़े और जनजाति क्षेत्रों के लिए और दलित अन्य पिछडे हुए वर्गों के लिए पर्याप्त रक्षोपाय किए जाएंगे, और

7. गणराज्य के राज्यक्षेत्र की अखण्डता और भूमि, समुद्र तथा आकाश पर उसके प्रभुत्वसंपन्न अधिकार, न्याय और सभ्य राष्ट्रों की विधि के अनुसार बनाए रचो जाएंगे, और

8. यह प्राचीन भूमि विश्व में अपना समुचित और गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेगी और विश्व शान्ति तथा मानव कल्याण के लिए स्वेच्छा से अपना पूरा सहयोग प्रदान करेगी।

पंडित नेहरू के शब्दों में उपर्युक्त संकल्प ''संकल्प से कुछ अधिक है। यह एक घोषणा है, एक दृढ़ निश्चय है, एक प्रतिज्ञा है, एक वचन है और हम सभी के लिए यह एक समर्पण है''।

संविधान विशिष्ट लक्षण :–

हमारे संविधान के बहुत से विशिष्ट लक्षण है जिनके कारण इसका अन्य संविधानों से विभेद किया जाता है, यद्यपि इसकी रचना में विश्व के सभी ज्ञात संविधानों की खोजबीन की गई थी और इसके बहुत से उपबन्ध अन्य संविधानों से उठाए गए हैं। डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा था।

यद्यपि हमारे संविधान को उधार का संविधान कहा जा सकता है किन्तु उसके रचनाकारों की इस बात के लिए प्रशंसा करनी होगी कि उन्होंने विद्यमान संविधानों हमारे देश के स्वभाव इस बात के लिए प्रशंसा करनी होगी कि उन्होंने विद्यमानसंविधानों के सर्वोत्तम लक्षणों को एकत्र किया और उनके कार्यकरण में जो दोष प्रकट हुए थे, उनके परिहार के लिए उन्हें उपान्तरित करते हुए अपने देश की आवश्यकता और विद्यमान दशाओं के लिए अनुकूलित किया। यदि यह पैबन्द का काम है तो यह कहना होगा कि सुन्दर पैबन्द लगाए गए हैं।

अनेकों संशोधनों द्वारा अनुपूरित और 42वें 43वें और 44वें संशोधन द्वारा 1976–78 में पुनः निर्मित– प्रारम्भ में ही यह बात देना उचित होगा कि 1949 के संविधान के कुछ मूल लक्षण 1996 तक किए गए 78 संशोधनों द्वारा पर्याप्त रूप से उपान्तरित कर दिए गए हैं। इनमें से 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 ने (1977–78 में 43वें और 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा (उपान्तरित) संविधान को महत्वपूर्ण बातों में व्यवहारतः पुनः निर्मित किया। संविधान का 73वां संशोधन का 73वां संशोधन अप्रैल 1993 में लागू हुआ इसके द्वारा पंचायतों की स्थापना और उनके लिए निर्वाचन से संबंधित 16 अनुच्छेद जोड़े गए। ये सब एक नए भाग (भाग 9) में है। इसी से संविधान में एक अनुसूची (अनुसूची 11) जोड़ी गई है, जिसमें यह बताया गया है कि कौन से कार्य पंचायतों को सौंपे जा सकते हैं।

74वां संशोधन नगरपालिकाओं की स्थापना और उनके लिए निर्वाचन से संबंधित है। इसके द्वारा एक भाग 9क अंतःस्थापित की गई है, जिसमें वे कार्य गिनाए गए हैं जो नगरपालिकाओं को सौपे जा सकते है। यह संशोधन 1 जून 1993 से प्रवृत्त हुआ है।

भारत के संविधान की यह विशेषता है कि यह विश्व का सबसे लम्बा और ब्यौरे वाला सांविधानिक दस्तावेज है। मूल सांविधानिक दस्तावेज है। मूल संविधान में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थी। (इसमें पश्चात्वर्ती संशोधनों द्वारा वृद्धि की गई है) बहुत से उपबन्धों का निरसन करने के पश्चात् भी इसमें (दिसम्बर, 2000 तक) 442 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियां हैं।

1950–1996 के बीच की अवधि में बहुत से अनुच्छेदों का लोप कर दिया गया है। संविधान में 64 अनुच्छेद और 4 अनुसूचियां जोड़ी गई है अर्थात् अनुच्छेद 31क– 31ग, 35क, 39क, 43क, 48क, 51क, 131क, 134क, 139क, 144क, 224क, 233क, 239क, 239कक, 239 कख, 239ख, 243, 243क, से 243यद तक, 244क,350ख, 361क, 363, 257क, 258क, 290क, 300क, 312क, 323क, 323ख, 350क, 371क, 371झ, 372क, 378क, 394क।

हमारे उच्चतम यद्यपि हमारे संविधान की संरचना परिसंघिय है। किन्तु यह ब्रिटिश संसदीय प्रणाली के नमूने पर बनाई गई है जिसमें कार्यपालिका को सरकार की नीति बनाने और उसे विधि में परिणत करने का प्राथमिक उत्तरदायित्व उठाना पड़ता है। इस उत्तरदायित्व के लिए पुरोभावी शर्त यह है कि उसे राज्य की विधायी शाखा का भारत के संविधान इंग्लैंड के समान ही संसदीय कार्यपालिका विश्वास प्राप्त रहे की प्रणाली है।

न्यायालय के शब्दों में–

केन्द्र और राज्य सरकार के अन्तर सम्बन्ध

परिसंघ के संविधान की अपनी–अपनी प्रशासनिक सीमाओं के भीतर प्रभुता होती है। किन्तु इनके लिए एक दूसरे से पूर्णतः विलग रहना संभव नहीं है। प्रत्येक इकाई अपनी आंतरिक प्रभुता का प्रयोग तभी कर सकेगी जब संघ की अन्य इकाइयों से उसे मान्यता मिले और सहयोग प्राप्त हो। इसलिए सभी परिसंघ संविधान सौहार्द्र के कुछ नियम अधिकथित करते हैं जिनकी इकाइयां एक दूसरे के साथ व्यवहार में अनुपालन करती है। ये नियम और अभिकरण उदाहरणार्थ ऐसे विषय के संबंध में है–

(क) एक दूसरे के सार्वजनकि कार्य, अभिलेख और न्यायिक कार्यवाहियों की मान्यता।

(ख) विवादों का न्यायिकेतर निपटारा।

(ग) राज्यों के बीच सहयोग।

(घ) उन अंतराज्य व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वाधीनता।

(अ) सार्वजनिक कार्य आदि की मान्यता

प्रत्येक राज्य मान्यता देने सेकी अधिकारिता उसके अपने राज्य क्षेत्र तक सीमित होती है इसलिए (अनुच्छेद 162, 245–1) एक राज्य के कार्य और अभिलेखों को यदि मान्यता के लिए विश करने के लिए कोई उपबन्ध हो तो दूसरे राज्य द्वाराइंकार किया जा सकता है अतएवः संविधान में यह उपबन्ध है ''भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र संघ के और प्रत्येक राज्य के सार्वजनिक कार्यों, अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाहियों की पूरा विश्वास और पूरी मान्यता दी जाएगी, अनुच्छेद 261–1'' इसका अर्थ यह हुआ कि किसी राज्य में उसी प्रकार मान्यता दी जाएगी जैसे उस राज्य के अधिनियमों आदि को दी जाती है। संसद को यह शक्ति है कि वह ऐसे कार्यों, अभिलेखों आदि को साबित करने की रीति के बारे में विधान बन पा सकेगी, अनुच्छेद 261–21.

(आ) विवादो का न्यायकेतर निपटारा :–

प्रत्येक परिसंघ में राज्य सामान्यतया अपनी आंतरिक प्रभुता के प्रयोग में स्वायत्त इकाइयों के रूप में कार्य करते है। इसलिए इकाइयों के बीच हितों का संघर्ष होना संभव है। इसलिए संघ की शक्ति बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि इकाइयों के बीच विवादों के लिए न्यायकेतर निकायों के द्वारा विवादों के निपटाने के लिए और परामर्श और संयुक्त कार्यवाही द्वारा विवादों के निवारण के लिए पर्याप्त उपबंध हो। अनुच्छेद 131 में राज्यों के बीच विवादों के न्यायिक अवधारणा का उपबंध है। उच्चतम न्यायालय को इस विषय में अनन्य अधिकारिता दी गई है। अनुच्छेद 262 में एक विशेष वर्ग के विवादों के न्यायकेतर अधिकरण द्वारा न्याय निर्णय की व्यवस्था है। अनुच्छेद 263 में प्रशासनिक निकास द्वारा अन्वेषण और सिफारिश के माध्यम से अंतरराज्यिक विवादों के निवारण की व्यवस्था है, जो निम्न हैं–

(1) संसद, विधि द्वार किसी अंतरराज्यिक नदी या नदीदून के या उनमें जल के प्रयोग, विवरण या नियंत्रण के सम्बन्ध में किसी विवाद या परिवाद के न्यायनिर्णयन के लिए उपबन्ध कर सकेगी और इसमें उच्चतम न्यायालय सहित सभी न्यायालयों की ऐसी विवादों को ग्रहण करने की अधिकारिता का अपवर्णन करने का उपबन्ध भी हो सकेगा अनुच्छेद 262, इस शक्ति के प्रयोग में संसद ने अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 अधिनियमित किया है जिसमें किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी – दून के जल के बारे में दो या अधिक राज्यों के बीच उद्भूत होने वाले विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए तदर्थ अधिकरण के गठन का उपबन्ध किया गया है।

(2) यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत होता है कि ऐसी परिषद से लोकहित की सिद्धि होगी तो वह अंतराज्यिक विवादों की जांच करने और सलाह देने के लिए अंर्तराज्य परिषद स्थापित कर सकेगा अनुच्छेद 263, क।

राज्यों के बीच सहयोग :–

अंर्तराज्य परिषद स्थापित करने की राष्ट्रपति की शक्ति का प्रयोग न केवल विवादों पर सलाह देने के लिए बल्कि ऐसे सभी विषयों का निवारण करने और उन पर चर्चा करने के प्रयोजन के लिये भी किया जा सकता है, जिनमें सभी या कुछ राज्य अथवा संघ और एक या अधिक राज्यों का सामान्य हित हो। इस शक्ति के प्रयोग से राष्ट्रपति ने एक अंर्तराज्य परिषद, केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद, स्थानीय स्वायत शासन की केन्द्रीय परिषद, केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद, केन्द्रीय होम्योपैथी परिषद की स्थापना की है। इस संबंध में यह उल्लेख करना उचित होगा कि अंतरराज्यिक विषयों पर सलाह देने के लिए सलाहकारी निकाय भी कानूनी अधिकार के अधीन स्थापित किए गए हैं।

(क) राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 द्वारा भारत के राज्य क्षेत्र को पांच क्षेत्रों में बांटा गया है और प्रत्येक क्षेत्र के सामान्य हित के विषयों पर सलाह देने के लिये क्षेत्रीय परिषद बनाई गई है ये पांच क्षेत्र है उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी और केन्द्रीय क्षेत्र।

(ख) नदी बोर्ड अधिनियम, 1956, अर्न्तराज्य नदी या नदी घाटी के विनियमन या विकास के संबंध में हितबद्ध सरकार को सलाह देने के लिए नदी बोर्ड की स्थापना का उपबंध करता है।

(ग) किसी राज्य द्वारा अन्य राज्यों या राज्यक्षेत्र से आयतित माल पर किए जाते हैं, अनुच्छेद 304–क.

(घ) किसी राज्य, अन्य राज्यों या राज्यपक्षों से आयातित माल पर किए जाते हैं अनुच्छेद 304–क.

(ङ) संघ या राज्य विधान मंडल की अनुच्छेद 19–6–2 के अधीन राज्य द्वारा या राज्य के स्वामित्व या नियंत्रण में किसी निगम द्वारा कोई व्यापार, कारोबार उद्योग या सेवा नागरिकों को पूर्णतः या आगतः अपवर्जन करके या अन्यथा चलाए जाने के लिए विधि बनाने की शक्ति।

इस विषय को समाप्त करने के पहले हम अनुच्छेद 19–1–छ और 301 के उपबन्धों अनुच्छेद 19–1–छ और 301 के प्रविष्य में क्या अंतर है इस पर विचार करेंगे क्योंकि ये दोनों अनुच्छेद व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति देते हैं। इस प्रश्न का कोई अंतिम उत्तर तो नहीं दिया गया है, किन्तु मोटे तौर ये यह कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 19–1–छ उस व्यक्ति के दृष्टिकोण से स्वतंत्रता को देखता है जो कोई व्यापार या वृति चलाता है और युक्तियुक्त निर्बन्धनों के अधीर रहते हुए भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र में इस स्वतंत्रता की प्रत्याभूति देता है जैसा कि अनुच्छेद 19–5 में उपदर्शित किया गया है। दूसरी ओर अनुच्छेद 301 एक स्थान से दूसरे स्थान के बीच माल के आवागमन या यातायात अथवा वाणिज्यिक संव्यवहारों के चलाए जाने के दृष्टिकोण से देखता है। इसमें उन व्यक्तियों का महत्व नहीं है जो व्यापार या वाणिज्य कर रहे हैं। अनुच्छेद 301 द्वारा घोषित स्वतंत्रता पर जो निर्बन्धन अधिरोपित किए जा सकते हैं वे केवल यही हो सकते हैं जो अनुच्छेद 302–305 में दिए गए है। किन्तु यदि इन स्वतंत्रताओं में से किसी पर भी निर्बन्धन की सांविधानिकता को चुनौति दे सकता है चाहे निर्बन्धन कार्यपालिका आदेश द्वारा अधिरोपित किया गया हो या विधान द्वारा जब अनुच्छेद 301 या 304 का उल्लंघन होता है तो सामान्यता अनुच्छेद 19–1–छ द्वारा प्रत्याभूत व्यक्ति के मूल अधिकार का भी अतिलंघन होगा। ऐसी दशा में वह व्यक्ति भी अनुच्छेद 32 के अधीन आवेदन कर सकता है, यद्यपि अनुच्छेद 301 या 304 मूल अधिकार के रूप में भाग 3 में सम्मिलित नहीं है।

4.3 योजना आयोग एवं योजना की प्रक्रिया (Planning Commission and planning process):–

भारत में योजना निर्माण के लिए 15 मार्च, 1950 में केन्द्रीय सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा योजना आयोग स्थापित किया गया। योजना आयोग का मुख्य कार्य योजना को तैयार करना तथा उसकी प्रगति का मूल्यांकन करना होता है। यह केवल परामर्श ही दे सकता है तथा विकास परियोजनाओं को कार्यान्वित करने का कार्य केन्द्रित तथा राज्य सरकारों का होता है।

योजना आयोग का संविधान में कोई उल्लेख नहीं है, अतः इसका संगठन परामर्शदात्री व विशेषज्ञ संस्था के रूप में सरकार के एक प्रलेख द्वारा हुआ। इसका पदेन अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। सदस्यों की स्थिति को निम्नलिखित संरचना के आधार पर समझा जा सकता है–

अध्यक्ष (प्रधानमंत्री)

उपाध्यक्ष (मोंटेक सिंह अहलूवालिया)

एक्स आफिसियो सदस्य	विषय विशेषज्ञ
1. वित्त मंत्री	1. मिहिर सेन
2. गृह मंत्री	2. सुमित्रा चौधरी
3. रक्षा मंत्री	3. नरेन्द्र जाधव
4. कृषि मंत्री	4. वी.के. चतुर्वेदी
5. उद्योग मंत्री	5. अभिजित सेन
6. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री	6. प्रो. साईदा हमीद
7. सूचना एवं प्रसारण मंत्री	7. सुभाषचन्द्र पाणि

इसके अतिरिक्त सदस्य सचिव (वरिष्ठ आई.ए.एस.) तथा अन्य स्टाफ होते हैं। विशेषज्ञ श्रेणी के सदस्यों को राज्य मंत्री का दर्जा प्राप्त होता है।

योजना आयोग के कार्य :–

योजना आयोग के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. इसका सर्वप्रथम कार्य देश के भौतिक पूंजी एवं मानवीय साधनों, जिसमें तकनीकी सेविवर्ग भी शामिल है, का अनुमान लगाना है तथा ऐसी संभावनाओं का भी लगाना होता है जिनके द्वारा देश की आवश्यकताओं के अनुरूप कम पाए जाने वाले साधनों में वृद्धि की जा सके।

2. देश के साधनों के सबसे प्रभावशाली तथा संतुलित उपयोग के लिए योजना का निर्माण करना।

3. साधनों के आवंटन का सुझाव देना।

4. योजना के सफलतापूर्वक कार्यान्वयन के लिए आवश्यक तन्त्र की प्रकृति की निर्धारित करना।

5. मूल्यांकन करना तथा इसके अनुसार नीति सम्बन्धी समायोजन एवं सुझाव देना।

6. ऐसे घटकों की ओर संकेत करना जो आर्थिक विकास में रूकावट डालते हो।

7. ऐसा विशेष समस्याओं की जांच करना जो परामर्श के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा इसे भेजी जाए।

बोधगम्य प्रश्न

प्रश्न – योजना आयोग एवं इसके सदस्य संरचना पर प्रकाश डालिए?

प्रश्न – योजना आयोग के कार्यों की विवेचना कीजिए?

इकाई–5

5.1 विकास प्रशासन।

5.2 सामाजिक एवं आर्थिक नियोजन का विवरण एवं समस्यायें।

5.3 निर्धनता एवं इसके सामाजिक आर्थिक राजनैतिक दुष्परिणामः।

विकास प्रशासन (Development Administration)

भारत के एक प्रशासनिक अधिकारी यू एल. गोस्वामी ने 'विकास प्रशासन' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अपने एक लेख ''दि स्ट्रक्चर ऑफ पब्लिक एडिमिनस्ट्रेशन'' नामक पत्रिका में किया था। यह लेख सन् 1955 में ''द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'' नामक पत्रिका में प्रसारित हुआ था। विकास प्रशासन की अवधारणा के समर्थकों में जॉर्ज ग्राण्ट को अग्रणी की अवधारणा के समर्थकों में जार्ज ग्राण्ट को अग्रणी माना जाता है। इसमें इसके बाद रिग्स, वाईडनर, मॉण्टगोमेरी, हैडी, पाई पानिन्दीकर, आदि विद्वानों ने 'विकास प्रशासन' अवधारणा को स्पष्ट करने में सहयोग दिया।

'विकास प्रशासन' का अर्थ कुछ विद्वान प्रशासन के आधुनिकीकरण से लगाते हैं। कुछ इसे आर्थिक विकास के लिए तो कुछ इसे प्रशासनिक विकास का ही पर्यायवाची मानते हैं।

साधारण भाषा में 'विकास प्रशासन' की धारणा राज्य द्वारा जनता की बढ़ती हुई विकासात्मक आवश्यकताओं एवं मांगों को संतुष्ट करने की क्षमता से सम्बन्धित है।

आर्थिक विकास की योजना बनाने तथा राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के लिए 'विकास प्रशासन' साधनों को प्रवृत्त करने तथा बांटने का कार्य करता है।

मूलरूप से 'विकास' शब्द अर्थशास्त्र से लिया गया है, किन्तु बाद में इसे राजनीतिशास्त्र और लोक प्रशासन से सम्बन्धित किया गया हैं, अर्थशास्त्र में 'विकास' शब्द के दो अर्थ लगाए जाते हैं, पहला 'टेक ऑफ' की स्थिति जहां से अर्थव्यवस्था अपने आप ही आगे बढ़ती रहती है और दूसरा इस स्थिति तक पहुंचने की प्रक्रिया।

अतः 'टेक ऑफ' की स्थिति पाने पर विकसित और उससे पहले विकासशील अवस्था कही जाती है। राजनीति में 'विकास' शब्द के अर्थ पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान राजनीतिक विकास का अर्थ राजनीतिक रूप से आधुनिकता की उपलब्धि से लगाते हैं, आधुनिक स्थिति हो उस स्थिति को मानते हैं जो पाश्चात्य देशों में प्राप्त कर ली है। हंटिग्स ने संक्षेप में राजनीतिक विकास को राष्ट्रीय एकीकरण, युक्तीकरण प्रजातन्त्रीकरण तथा जन सहभागिता के अर्थ में परिभाषित करते हैं।

प्रो. सी.एच. डाड़ के अनुसार, ''राजनीतिक विकास के लिए आर्थिक एवं सामाजिक आधुनिकीकरण आवश्यक है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है, कि प्रशासनिक प्रशासन के लिए राजनीतिक विकास आवश्यक है।''

विकास के सन्दर्भ में जब प्रशासन पर विचार किया जाए तो प्रशासन को नौकरशाही के अलावा राजनीतिक प्रतिनिधि, हित समूह, कार्य से सम्बन्धित नागरिकों को सम्मिलित करना अनिवार्य हो जाता है। प्रशासन जितना अधिक जनता के निकट होगा, विकास उतना ही अधिक तेजी से हो सकेगा।

विकास प्रशासन की अवधारणा में विकास का प्रशासन और प्रशासन का विकास शब्द परस्पर गुंथे हुए है। अतः विकास या विकासात्मक प्रशासन का अर्थ है विकास से सम्बन्धित प्रशासन। यह लोक प्रशासन से इस बात में समान है कि यह भी उसी तरह के नियम, नीति एवं मानकों को औपचारिक रूप से आधार मानता है, जैसा कि लोक प्रशासन में होता है, किन्तु यह लोक प्रशासन के उद्देश्य, क्षेत्र एवं जटिलता में भिन्न है। विकास प्रशासन एक विशेष प्रकार के उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक विशेष कार्यक्रम तथा एक विशेष विचारधारा है।

विकासशील प्रशासन अनिवार्य रूप से प्रशासन की परिवर्तन–उन्मुखी प्रशासकीय आचरण से सम्बन्धित है, इसमें पारस्परिक किस्म के प्रशासकीय कार्यों का भी ही अध्ययन नहीं होता है। यह विकास योजना और कार्यान्वयन के साधन और व्यवस्था के भीतर परिवर्तन की ओर उन्मुखी है।

'विकास प्रशासन' माण्टगोमेरी के अनुसार, ''अर्थव्यवस्था में योजनाबद्ध परिवर्तन लाता है और कुछ कम सीमा तक राज्य की सामाजिक सेवाओं में यह सामान्यतः राजनीतिक क्षमताओं को बढ़ानों के प्रयत्नों से सम्बद्ध नहीं है।''

प्रो. वाईडनर के अनुसार, ''विकासशील प्रशासन, गतिशील राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक उद्देश्यों के चुनने तथा पूरा करने का साधन है।''

फेड् रिग्स के अनुसार, ''विकास प्रशासन उन कार्यक्रमों और परियोजनाओं को पूरा करने का प्रयासों से सम्बन्धित है। जो विकास के उद्देश्यों की पूर्ति में व्यक्तियों द्वारा प्रवर्तित किये जाते हैं।''

पानिन्दीकर के शब्दों में, "विकास प्रशासन उस रचना, संगठन तथा संगठनात्मक व्यवहार से सम्बन्धित है जो सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तन की उन योजनाओं एवं कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए है, जिन्हें सरकार ने पूरा करने के लिए स्वीकार किया है है जिन्हें सरकार ने पूरा करने के लिए स्वीकार किया है।''

डोनाल्ड सी. स्टोन का कथन है कि ''विकास प्रशासन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संयुक्त प्रयास के रूप में सभी तथ्यों (तत्वों), साधनों का समिश्रण है इसका लक्ष्य निर्धारित समय के अन्तर्गत विकास के पूर्व निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति है, इस उद्देश्य से परस्पर सम्बन्धित योजनाओं नीतियों, कार्यक्रमों, परियोजनाओं, क्रियाओं और अन्य कदमों के निर्माण, मूल्यांकन और क्रियान्वयन का निरन्तर चक्र चलता रहता है।''

विकास प्रशासन और प्रशासनिक विकास (Development Adminstration & Adminstrative Development)

विकास प्रशासन लोक प्रशासन की ही अंग है। लोक प्रशासन में कई तरह से कार्य होते हैं जैसे– राजस्व प्रशासन, पुलिस प्रशासन, किन्तु इसमें विकास की अनुभूति नहीं होती।

विकास प्रशासन का ध्यान प्रगतिशील, सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के हेतु सरकार द्वारा प्रभावित परिवर्तन लाने पर ध्यान दिया जाता है। यदि हम प्रशासकीय संरचना को ध्यान में रखे तो हम कहेंगे विकास प्रशासन, योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, विकास निगम तथा इसी तरह के नवीन अभिकरणों की रचना करके उनके विकास सम्बंधित कार्यों को करता है।

वार्डनर के शब्दों में, ''विकास प्रशासन एक कार्योन्मुख और उद्देश्योन्मुख प्रशासकीय प्रणाली है।'' लोक प्रशासन एवं विकास प्रशासन एक दूसरे से विरोधी नहीं है। विकास प्रशासन के अन्तर्गत लिए लोक प्रशासन के अन्तर्गत उपयुक्त अभिकरणों, विभागों और पदों को निर्मित किया जाता है, जिला विकास अभिकरण (डी.आर.डी.ए.) तथा खण्ड विकास अधिकारी (बी.डी.ओ.) के पद कुछ इस प्रकार के हैं। लोक प्रशासन के अभिकरणों एवं पदों का विकास प्रशासन हेतु पुननिर्मित किया जाता है। जैसे भारत में कलेक्टर के पद का रूपान्तरण जिला विकास अधिकारी के रूप में किया गया है। संक्षेप में, हम सुधार कह सकते हैं कि विकास प्रशासन की वजह से लोक प्रशासन की संरचना में एवं परिवर्तन किए जाते हैं।

समीक्षा – विकास प्रशासन लोक प्रशासन का वह पहलू है जोकि सरकारी प्रभाव के माध्यम से प्रगतिशील, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक लक्ष्यों में परिवर्तित पर जो देता है। विकास प्रशासन के द्विमुखी लक्ष्य है– राष्ट्र निर्माण और सामाजिक आर्थिक प्रगति।

Problems and prospects of Social and Economic Planning

Introduction :-

आज पिछड़ी हुए अविकसित राष्ट्र विकासशील और विकसित श्रेणी में आना चाहते हैं। प्रत्येक राष्ट्र योजनाबद्ध प्रयत्नों के द्वारा एक निश्चित अवधि में कुछ सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करना अपनी समस्याओं से मुक्ति पाना एवं अभावों पर विजय पनाना चाहता है। ऐसा करने के लिए वह नियोजन या आयोजन का सहारा लेता है। जार शासन से मुक्त होने के बाद रूस ने अपने देश में सन् 1928 से पंचवर्षीय योजनाएं प्रारंभ की और उसे समाज कल्याण पुनर्निर्माण एवं देश के सर्वांगीण विकास में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। रूस से प्रेरित होकर विश्व के अन्य देशों में भी अपने यहां योजनाबद्ध विकास कार्य को अपनाया । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में भी समाज कल्याण एवं सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए पंचवर्षीय योजनाएं बनायी गयी, 150 वर्षों के अंग्रेजी शासनकाल में देश की अर्थ व्यवस्था चरमरा गयी थी, अनेक सामाजिक–आर्थिक समस्याएं उत्पन्न हो गयी थी, जिससे मुक्ति पाने के लिए योजनाबद्ध विकास ही एकमात्र उपाय था । अतः 1951 से देश में पंचवर्षीय योजनाएं प्रारंभ की गयी । विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में समाज कल्याण के

लिए किए गए प्रयत्नों को उल्लेख करने से पूर्व नियोजन के अर्थ एवं महत्व को जान लेना आवश्यक है।

एक कल्याणकारी राज्य में सामाजिक–आर्थिक सुधारों में राज्य की भूमिका सर्वोपरि होती है।

वैसे तो आज नियोजन का तात्पर्य अनेक नीतियों के सफल निर्धारण और क्रियान्वयन के संबंध में लगाया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि नियोजन का जो व्यापक रूप आज हम देख रहे हैं वह रूस की देन है, बाकी देश तो उसका अनुशरण मात्र कर रहे हैं। तब रूस ने आर्थिक–सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए आर्थिक नियोजन के मार्ग को अपनाया नियोजन के कारण रूस की आर्थिक नीतियां सफल होती गई। रूस की देखा–देखी अन्य राष्ट्र की भी नियोजन के मार्ग पर चल पड़े।

भारत ने इस मार्ग को 1951 में औपचारिक रूप से अपनाया इस अवधि के पश्चात 10 पंचवर्षीय योजनायें एवं 5, 1 वर्षीय योजनाओं के नियोजन का ही परिणाम है।

नियोजन का अर्थ एवं परिभाषाएँ :–

नियोजन का अर्थ :–

नियोजन का सीधा संबंध जन कल्याण से है नियोजन के माध्यम से जन सामान्य के जीवन स्तर में सुधार किया जाता है, देश में उपलब्ध आर्थिक संसाधनों का संतुलित ढंग से उपयोग किया जाता है तथा आंतरिक समाधान उत्पन्न किया जाता है, यद्यपि आर्थिक प्रतिस्पर्धा के इस युग में नियोजन को आर्थिक नियोजन मानते हुए इसका अध्ययन मुख्यतः अर्थशास्त्र के अंतर्गत किया जाता है। किन्तु नियोजन को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से भी देखा जाता है।

इसका श्रेय कार्ल मैनहीन को जाता है। मैनहीन की पुस्तक "Man and Society in an age of Reconstruction" नियोजन की अवधारणा का अध्ययन करने के दृष्टिकोण से एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

मैनहीन ने अपनी अन्य पुस्तक "Freedom, Power and Democratic Planning" में सामाजिक नियोजन की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित है–

(i) मैनहीन–''नियोजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कोई क्रिया उचित साधनों के चयन तथा उनके प्रयोग द्वारा लक्ष्य प्राप्ति की ओर बढ़ती है।''

(ii) हैरिस (Marris, S. E. Economic Palnning) –''नियोजन का अर्थ आय तथा मूल्य के संबंध में नियोजन अधिकारी इस सुनिश्चित उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु साधनों के वितरण से है।''

(iii) इतियट –''नियोजन वह साधन है जिसे सदैव किसी निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के संदर्भ में ही प्रयोग किया जाता है।''

(iv) बाबू –''किसी देश में विद्यमान भौतिक, मानसिक, आर्थिक या प्रातिक संसाधनों का देश के नागरिकों के अधिकतम हित के लिए विचारपूर्ण उपयोग ही नियोजन है।''

सामाजिक नियोजन :–

आज का युग नियोजन पर आधारित विकास कार्यों का है। भारत सहित अधिकांश विकासशील देशों के सामाजिक आर्थिक लक्ष्य नियोजित अर्थ व्यवस्था के माध्यम से ही अर्जित किये जा रहे है। विकासोन्मुख अर्थ व्यवस्थाओं को समुचित दिशा तथा गति प्रदान करने का भारतीय प्रयास विश्व में अनूठा है। यद्यपि नियोजन तो चीन और रूस में भी अपनाया जाता है किन्तु वहां पूर्णतया समाजवादी शासन व्यवस्था के अंतर्गत सरकारी उपक्रमों की भरमार है। ष्भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से होने वाले आर्थिक सामाजिक विकास का मुख्य लक्ष्य देश के नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार गरीबी निवारण, आधुनिक समाज का निर्माण तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिक का अधिकाधिक प्रसार करते हुए आत्म निर्भरता प्राप्त करना है।

भारत एक विशाल देश है जिसकी आर्थिक एवं सामाजिक समस्यायें भी विशाल है। यहां कि लगभग 26.1 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी, बेकारी, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, अस्पृश्यता, राष्ट्रीय एकीकरण का अभाव, भाषावाद, साम्प्रदायिकता औद्योगिक तनाव अस्वास्थ्य, अशिक्षा, अपराध, बाल–अपराध एवं आर्थिक पिछडापन आदि समस्यायें व्याप्त है। इन समस्याओं से मुक्ति पाने आर्थिक विषमता को दूर करने, सामाजिक तनावों से छुटकारा पाने एवं सांस्कृतिक पिछड़ेपन पर काबू पाने गांवों का पुनर्निर्माण करने एवं समाजकल्याण हेतु भारत में नियोजन आवश्यक है।

जब किसी निर्धारित नीति के अनुसार योजना बनाकर सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है तो उसे नियोजित सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। वर्तमान सामाजिक दशाओं को उन्नत करने के लिए एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के उद्देश्य से इस प्रकार के परिवर्तन लाने की बात सोची जाती है। सामाजिक जीवन में नियोजित परिवर्तन लाने की योजना सरकार के द्वारा अथवा समाज सुधारकों के द्वारा संस्थायें अपनी ही जाति में विवाह, धिवा–विवाह, सती प्रथा, शिक्षा, हरिजन की अवस्था भिक्षावृत्ति, स्त्रियों का अनैतिक व्यापार आदि के मामलों में आज हमें जो परिवर्तन देखने को मिलता है तभी नियोजित सामाजिकपरिवर्तन ही है। इन क्षेत्रों में सरकारी प्रयत्नों के फलस्वरूप परिवर्तन की स्पष्ट झलक देखने को मिल सकती है उदाहरण जातीय नियम के अनुसार पहले लोगों को अपनी ही जाति में विवाह करना पड़ता था पर जब उन नियमों को बदल दिया गया है। अब कानूनी तौर पर अंतर्जातीय विवाह भी मान्य है। उसी प्रकार कानून बनाकर शिक्षा व नौकरी की सुविधाओं को बढ़ाकर जब बाल विवाह को रोकने का प्रयत्न किया गया और इस दिशा में आज परिवर्तन भी स्पष्ट है। विधवा पुनर्विवाह पर आज कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं है। सती प्रथा कानूनी तौर पर अपराध घोषित हो जाने पर अब बंद हो गई है। हरिजन तथा अन्य पिछड़ी जातियों की सामाजिक स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन किये जाने की आशा की जा रही है। सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषणों से रक्षा करने के जो सुनियोजित प्रयत्न आज जारी है, उनके फलस्वरूप समाज का यह अंग जो कि अब तक अपंग सा बना हुआ है। अब राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के क्षेत्र में फिर से सक्रिय हो उठा है। इस सक्रियता को ओर भी बढ़ाने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं

में पिछड़े वर्गों की उन्नति के हेतु कार्यक्रम बनाए गए है, जिनसे विभिन्न क्षेत्रों के विकास कार्यक्रमों से होने वाले लाभ इन पिछड़े वर्गों को विशेष रूप से प्राप्त हो सकें। इसी प्रकार भिक्षावृत्ति हमारे देश के लिए एक सदियों पुराना अभिशाप है। इस परिस्थिति में परिवर्तन लाने के लिए राज्य सरकार तथा स्थानीय संस्थाएं प्रयत्न कर रही है, सबसे पहले इन कुप्रथाओं को तीर्थ स्थानों, बड़े शहरों, पर्यटक केन्द्रों से हटाने का प्रयत्न हो रहा है। बाल–भिक्षावृत्ति की समस्या पर भी अधिक बल दिया जा रहा है।

इन सब परिस्थितियों में परिवर्तन लाने के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं,जिससे एक अच्छी दिशा मिल सकें।

आर्थिक नियोजन

आर्थिक नियोजन वर्तमान संसार के आर्थिक जीवन का आवश्यक अंग है। आज चाहे देश में कोई भी शासन प्रणाली हो आर्थिक नियोजन को सभी ने अपना लिया है, क्योंकि यह वर्तमान आर्थिक जीवन में औद्योगिक विकास, अंतराष्ट्रीय निर्भरता वैज्ञानिक पद्धति तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न समस्याओं को दूर करता है।

नियोजन अपने आर्थिक क्षेत्र में वृद्धि की गति तीव्र करने, उद्योग तथा कृषि के मध्य अधिक संतुलन लाने राष्ट्रीय एवं मानव संसाधनों का उपयोग करने और सम्पूर्ण श्रमशक्ति को समुचित आय–स्तर वाले रोजगार अवसरों की प्राप्ति करने का कार्य करता है।

1. आर्थिक नियोजन का अर्थ– विशेषतायें

अर्थ :–

वर्तमान आर्थिक व्यवस्था को सफल बनाने के लिए आर्थिक नियोजनों का सहारा लिया जाता है, क्योंकि यह एक ऐसी विवेक पूर्ण व्यवस्था है, जिसमें कम से कम साधनों के प्रयोग से अधिक कल्याण प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है, दूसरों शब्दों में कहा जा सकता है कि आर्थिक नियोजन के अंतर्गत राष्ट्रीय संसाधनों का पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के लिये विचारपूर्वक प्रयोग किया जाता है।

आर्थिक नियोजन में प्रतिस्पर्धा तथा पुनरावृत्ति जैसी बुराइयों को दूर करने के लिये केन्द्रीय नियंत्रण के अंतर्गत सभी पहलुओं को एक दूसरे से जोड़ दिया गया।

परिभाषायें :–

(1) लुईस लार्डबिन –''आर्थिक नियोजन का अभिप्राय एक ऐसे आर्थिक संगठन से है, जिसमें सब अलग–अलग कारखाने और औद्योगिक संस्थाओं को एक समन्वित इकाई के रूप में संचालित किया जाता है और जिसका उद्देश्य एक निश्चित अवधि में समान्त प्राप्त साधनों के प्रयोग द्वारा अधिकतम आवश्यकताओं की संतुष्टि प्राप्त करना होता है।''

(2) एच. डी. डिकन्सन –''कि क्या और कितना उत्पादन किया जाये, कहां और कैसे उत्पादन हो और उसका वितरण किस प्रकार से किया जाये के संबंध में निश्चित अधिकारों

द्वारा समस्त व्यवस्था का व्यापक परीक्षण करने के उपरांत महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णय करने को ही आर्थिक नियोजन कहते हैं।"

विशेषतायें :–

प्रमुख विद्वानों ने आर्थिक नियोजन का अर्थ स्पष्ट करने के साथ–साथ इसकी प्रमुख विशेषताओं का भी उल्लेख किया है।

(1) आर्थिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक विकास की गति को बढ़ाने के लिए संरचनात्मक परिवर्तन करना तथा अर्थव्यवस्था के समस्त पहलुओं में समन्वय स्थापित करना है।

उसमें अधिकतम आर्थिक सामाजिक कल्याण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित तथ्यों को अपनाया जाता है। उत्पादन में वृद्धि रोजगार की वृद्धि के लिए विभिन्न नियम बनाना तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि तथा आर्थिक असमानताओं को दूर करना इत्यादि।

आर्थिक, सामाजिक कल्याण के लिए निर्धारित लक्ष्यों को निर्धारित अवधि में पूरा करने के लिए आर्थिक नियोजन को अपनाया जाता है।

परिवर्तन से उत्पन्न दोषों को दूर करने के लिए आर्थिक नियोजन की व्यवस्था परिवर्तनीय अथवा लचीली होनी चाहिए।

आर्थिक नियोजन निरंतर एवं लम्बे समय तक चलने वाली प्रक्रिया है। इसीलिए इसका पूरा लाभ प्राप्त करने के लिए दीर्घकालीन नियोजन करके उसमें अल्पकालीन योजनाओं को कार्यान्वित करना अत्यावश्यक है।

आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन में संबंध :–

आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन के संबंध में कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि यदि समाज में परिवर्तन लाना है या उसे प्रगतिशील बनाना है, तो सबसे पहले उसकी आर्थिक संरचना में परिवर्तन लाना आवश्यक है, क्योंकि आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन होने से समाज की अन्य व्यवस्थायें स्वतः परिवर्तित हो जाती है इस कथन से स्पष्ट होता है कि इन दोनों का परस्पर घनिष्ठ संबंध है, सामाजिक व्यवस्था की अपेक्षा अर्थ व्यवस्था पर नियंत्रण करना मुश्किल है। इसीलिए सामाजिक आदर्शों की स्थापना से पूर्व देश आर्थिक दृष्टि से प्रगतिशील होना चाहता है।

आर्थिक नियोजन से आवश्यकता एवं आर्थिक साधनों में होने वाले विकास में सामंजस्य स्थापित किया जाता है तथा उत्पादन एवं वितरण के साधनों में उन्नति आय में असमानता विनियोग के वैज्ञानिक सिद्धांतों तथा उपभोग के स्तर में विकास करके आर्थिक समानता की स्थापना का प्रयास किया जाता है। आर्थिक नियोजन से विकासशील प्रक्रियाओं को प्रोत्साहन मिलता है। सामाजिक व्यवस्था की स्थिरतामिलती है तथा राष्ट्रीय आय में बढोत्तरी होती है, फलतः समाज में व्यक्तियों का रहन–सहन ऊंचा उठ जाता है तथा उसमें स्थिरता आती है।

आशा के विपरीत जब धनी लोगों का उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण हो जाता है तो सम्पूर्ण आय का एवं उत्पादन का केन्द्रीयकरण हो जाता है तो समाज में असमानता एवं विषमता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, आर्थिक शक्ति साधनों के केन्द्रीकरण को रोककर आर्थिक विकेन्द्रीकरण को लागू करने का प्रयास किया जाता है तथा आर्थिक नियोजन का उद्देश्य निम्न वर्ग की आय में वृद्धि करना तथा इससे संबंधित प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित करना निर्धारित किया जाता है ताकि समाज का पिछड़ा योषित एवं दलित वर्ग सामाजिक न्याय प्राप्त कर सके तथा समाज में आर्थिक समानता स्थापित हो सके।

इस प्रकार कहा जा सकता है, कि सामाजिक एवं आर्थिक नियोजन का परस्पर घनिष्ठ संबंध है।

सामाजिक आर्थिक नियोजन की प्रमुख समस्यायें

नियोजन की अनेक समस्यायें है, जिनका विवेचन व्यापक रूप में प्रमुख शीर्षकों के माध्यम से करते हैं–

साधनों के विनिधान की समस्यायें :–

विकास नियोजन में विभिन्न क्षेत्रों के लिए साधनों का नियतन करते समय सामान्यतः 5 तरह से समस्यायें उठती है जो भिन्न–भिन्न विकल्पों के मध्य वरण के रूप में होती है।

1. उपभोग तथा विनियोजन के मध्य

2. मानव प्राणियों में विनियोजन तथा भौतिक पूंजी में विनियोजन के मध्य

3. जन कार्यों तथा अन्य उत्पादक क्रियाओं के मध्य

4. आत्म निर्भरता एवं विदेशी व्यापार के मध्य

5. उद्योग तथा कृषि के मध्य करने होते हैं।

1. उपभोग तथा विनियोजन के मध्य चयन– उपभोग तथा विनियोजन के मध्य चयन करने का तात्पर्य है, उस गति का वरण करना जिस पर हमें आर्थिक विकास को वांछित बनाना है। रूस में एक लम्बे समय तक भारी उद्योग पर अधिक बल दिया गया था और प्रगति की गति को अपेक्षाकृत तीव्र बनाने के लिए उपभोग पदार्थों में कटौती की गई थी। एक वरण जिस पर बहुधा तर्क–वितर्क होता है कि एक विकास कार्यक्रम में साधनों का कितना बड़ा अनुभाग सामाजिक सेवाओं में लगाया जाना चाहिए।

2. आर्थिक विकास एवं सामाजिक सेवाएँ – इस संदर्भ में सामाजिक सेवाओं का विस्तार सामान्यतः पूंजी निर्माण को क्षति पहुंचाकर ही किया जा सकता है, क्योंकि सेवाओं की लागत प्राप्ति के लिये जिन लोगों पर कर लगाया जाता है, वे लोग कर निरूपण के प्रत्युत्तर में कटौती अपने उपभोग में न करके अपनी बचतों में ही कर सकते हैं। तथापि यहां यह संकेत करता है कि जहां कहीं सामाजिक सेवायें भौतिक पूंजी की लागत पर

फैलती है। यह आवश्यक नहीं कि उत्पादिकता पर उनका प्रतिकूल प्रभाव पड़े, यह केवल ऐसा है कि समुदाय अपना विनियोजन भौतिक साधनों से विनियोजिन की अपेक्षा अधिक उत्पादक सिद्ध हो सके। यदि विनियोजन जन–स्वास्थ्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में किया गया है तथापि ऐसा भी नहीं है कि जनस्वास्थ्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में किया गया है । तथापि ऐसा भी नहीं है कि जन–स्वास्थ्य पर किए गए सभी व्ययों ने उत्पादिता में वृद्धि की हो। अत्यन्त उत्पादक वे व्यय होते हैं जो दुर्बलकारी रोगों जैसे– मेलिया, चर्म ग्रंथी, अंकुश–कृमि, निडालु रोग या विलाजिया के करने की क्षमता बढ़ाती है।

इसी प्रकार शिक्षा पर लिए गए सभी व्यय भी उत्पादिता में वृद्धि नहीं करते। इस संदर्भ में इन तीन शिक्षा संबंधी कार्यों को उच्चतम प्राथमिकता देनी है, प्रथम कार्य, कृषिगत प्रसार सेवाओं से संबंधित है, जिसके अनुसार कृषि की वर्तमान प्रविधियां जैसे–उर्वरकों के प्रयोग, बीज नियंत्रण इत्यादि कृषकों को जितना शीघ्र संभव हो सिखाई जा सके। द्वितीय कार्य विश्वविद्यालय प्रशिक्षण स्तर पर ऐसे व्यक्तियों का प्रविधान करना चाहिए जो विकास कार्यक्रमों के निर्माण तथा कार्यान्वयन की योग्यताये रखता है। इनसे सरकार तथा व्यापार के लिए प्रशासनिक अधिकारीऔर सभी प्रकार के प्रविधज्ञ जैसे, अभियन्ता कृषि वैज्ञानिक, चिकित्सक, प्राध्यापक इत्यादि आ जाते हैं। तृतीय कार्य, विकास कार्यक्रम के लिये आवश्यक कुशल कर्मीगणों अर्थात् श्रमिकों शिष्यों चिकित्सा सहायकों इत्यादि का प्रशिक्षण देने का है।

3. सामाजिक कार्य एवं अन्य उत्पादक क्रियाएँ–सार्वजनिक कार्यों के विनियोजनों तथा कृषि निर्माण या ऐसी दूसरी क्रियाओं से विनियोजनों के मध्य ठीक संतुलन कर पाना बड़ा कठिन है। देशों में विकास के निम्नतम स्तर पर बहुधा मूलभूत सुविधाओं का अभाव एक प्रधान कठिनाई होती है, आर्थिक क्रियाओं की अन्य दिशाओं का विकास तीव्रगति से हो सकें, इसके पहले आवश्यक है कि परिवहन, कुछ संचार, जल आपूर्ति तथा विद्युत शक्ति के तत्वों को सुदृढ़ किया जाए। तथापि मामलों में यह संभव है कि ऐसी क्रियाओं में अधिक व्यय हो सकते हैं और कृषि तथा अन्य विनिर्माणक क्रियाओं के निमित्त पूंजी की गंभीर कभी पड़ सकती है, उदाहरण स्वरूप राजमार्गों पर अनिवार्य स्तर से अधिक व्यय किया गया धन अपेक्षाकृत अधिक उत्पादक ही माना जाएगा यदि उनका उददेश्य कृषकों के लिए उत्तम उपकरणों अति उत्तम पशुधन, प्रकृत्यात्मक सुविधाओं इत्यादि प्राविधान करना होगा, कभी–कभी जन–कार्य अत्यधिक पूंजी भी अवशोषित कर लेती हैं इसलिए नहीं कि वे अधिक महत्वपूर्ण है, अपितु इसलिए कि वे अधिक महत्वपूर्ण है, अपितु इसलिए कि वे अधिक कीमती तरीके से संपादित किए जाते हैं, अधिकांश अल्प– विकसित देश ऐसे विलासितापूर्ण तरीके से कार्य करने की सामर्थ्य नहीं रखते उन्हें कार्य को रास्ते रूप में पूर्ण कराने वाली संरचना की आवश्यकता होती है, पूंजी का ऐसा अभाव है कि साधारण तथा उसे कुछ प्रकृष्ट कार्यों पर ही केन्द्रित न करके अनेक साधारण निर्माणों में लगाया जाना चाहिये।

अल्पविकसित देशों में सरकारों से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह गांवों में अच्छी सड़कों, जलपूर्ति विद्यमान तथा दूसरी सामुदायिक आवश्यकताओं की व्यवस्था करें। इस विषय में उच्चतम वेतन एवं कार्य की उत्तम दशाओं का मिलना निजी उद्यमों की अपेक्षा सरकारें अधिक अपेक्षित हैं। इस प्रकार जन–कार्यों का निर्माण अपने सरकारी कर्मचारियों के एक विशिब्द वर्ग के लाभ के लिए समुदाय पर कर का भार डालता है। ऐसी

स्थिति में अत्यधिक व्ययों से बचाजा सकता है, यदिस्थानीय समुदायों को अपने ही हाथों अर्थात् ग्रामवासियों द्वारा पूर्ण होने वाले सार्वजनिक कार्यों को प्रारंभ करने के लिये प्रोत्साहित किया जाए। दृष्टान्तास्वरूप अपनी सड़कों, बंधों, विद्यालयों इत्यादि का निर्माण करना जिसके समुदाय अपने निजी श्रम का उपयोग करते हुए वस्तुओं एवं प्राविधिक सेवाओं की लागत के लिए सरकार से अंशदान प्राप्त कर सकते हैं।

(4) विदेशी व्यापार – जहां तक विदेशी व्यापार का संबंध है, अधिकांश अल्पविकसित देशों की सरकारें आत्म निर्भर साधनों के प्रति प्रवृत्त होती है और इसके लिए उन्हें अधिक विकासशील देशों की कटु आलोचना का शिकार भी बनना पड़ता है, तथापि यदि ऐसा कोई उपाय जो प्राथमिक वस्तुओं के निर्यात पर उनके पराश्रय को कम करता है तो उसे न्याय संगत ही कहा जाएगा इसमें बेकार लोगों को काम मिलता है।

(5) उद्योग एवं कृषि –जैसे–जैसे आर्थिक विकास होता जाता है वैसे–वैसे मानव शक्ति भी कृषि से विनिर्माण उद्योग की ओर आती रहती है क्योंकि प्राविधिक प्रग्रति के कारण जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति होना संभव हो जाता है, इस प्रकार की श्रम शक्ति कृषि छोड़ अन्य व्यवसायों को ग्रहण करती है, दूसरी ओर देश में जहां कृषि योग्य भूमि की अपेक्षा जनसंख्या अधिक होती है, कुछ प्राविधिक परिवर्तन पहले से ही काम में लगे श्रमिकों की संख्या घटा सकते हैं। परन्तु कुछ प्राविणिक परिवर्तन प्रति एकड़ उपज बझाने के लिए अनिवार्य भी है।

(6) गतिशीलता का प्रभाव – गतिशीलता का प्रभाव भारत के औद्योगिक विकास में बाधक बताया जाता है, भारतीय श्रमिक भूमि से लगाव रखता है, अतः वह बाहर जाकर काम करने में संकोच करता है, भूमि से उसका मोह उसे अनिवार्य रूप से उसे गतिशील नहीं होने देता, गांव के लोग यह समझते हैं कि उद्योग में नौकरी करने के लिए नगर में जाना है गांव के लोगों के मन में नगर का एक ऐसा चित्र होता है। जहां वे अपने परम्परागत आदर्शों व आचरण प्रतिमानों का विनाश करने वाला स्थान मानते हैं, उनका विचार है कि शहर में जाकर आदमी विगड़ जाता है, अतः वे उद्योगों में जाकर या अपने जवान बच्चों को भेजकर उन्हें बिगाड़ना नहीं चाहता, श्रम की गतिशीलता में यह चिंतन बाधक है जो अंतः औद्योगिक विकास मेंबाधक होता है।

अतः निष्कर्षता हम कह सकते हैं कि भारत में औद्योगिक विकास की संभावना बहुत आशाजनक व विचारणीय है। भारत में औद्योगिक विकास के संदर्भ में संदेह प्रगट करने वाले विद्वान इंग्लैंड व अमेरिका के औद्योगिक दशाओं को ध्यान में रखकर अपना निष्कर्ष निकालते हैं।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि सामाजिक व आर्थिक नियोजन की समस्या गंभीर है, इनके सुधार के लिये सरकार को विभिन्न पंचवर्षीय योजनायें चलानी चाहिये जिससे समाज की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार आ सकें।

5.3 निर्धनता एवं इसके सामाजिक–आर्थिक और राजनैतिक दुष्परिणाम (Poverty and its Socio&Economic and Political Consequences)

निर्धनता सभी समाजों की एक सार्वभौतिक समस्या है, अंतर केवल यह है कि कुछ देशों में कम लोग गरीब है, जबकि कुछ देशों के अधिकांश लोगों का जीवन इस समस्या से प्रभावित है। 'भारत में निर्धनता मुख्य रूप से मुख्य रूप से हमारी परम्परागत संरचना का परिणाम है।' इस सामाजिक संरचना में देश की आधी से भी अधिक आबादी को आर्थिक विकास के अवसरों से वंचित किया जाता रहा। इसका तात्पर्य है कि निर्धनता का सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के अभावों से होने के साथ ही सामाजिक वंचन से भी है। विभिन्न समुदायों में (समाजों में) निर्धनता के मानदण्ड एक दूसरे से भिन्न है, इसलिये हम इसे एक सापेक्षिक दशा मानते हैं भारत में एक लम्बे समय से गरीबी जन–जीवन के इतने बड़े हिस्से में व्याप्त रही कि इसे एक सामान्य दशा मानते हुए इसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। निर्धनता इस सीमा तक लोगों की जिन्दगी का हिस्सा बन गई कि वे स्वयं भी इसे अपने कर्मों और भाग्य का परिणाम मानने लगे। अनेक बुद्धिजीवियों ने भी समय–समय पर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि निर्धनता के लिए व्यक्ति स्वयं जिम्मेदार होता है तथा सामाजिक व्यवस्था तभी बनी रह सकती है जब कुछ लोग तरह–तरह के अभावों में रहते हुए समाज के प्रति अपने दायित्वों को पूरा करें। राजशाही के एक लम्बे युग के बाद जब कल्याणकारी राज्यों की स्थापना होना आरम्भ हुई, केवल तभी गरीबी को एक सामाजिक–आर्थिक समस्या मानकर राज्य द्वारा इसका समधान करने के प्रयत्न आरम्भ हुए।

निष्कर्ष :–

निर्धनता की अवधारणा (Concept of Poverty)

विभिन्न देशों में लोगों का जीवन स्तर एक दूसरे से भिन्न होने तथा लोगों की आवश्यकताएँ प्रथक होने के कारण निर्धनता की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा है, फिर भी विभिन्न विद्वानों ने अनेक मानदण्डों को ध्यान में रखते हुए निर्धनता को परिभाषित किया है।

गिलिन और गिलिन के अनुसार, ''निर्धनता वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति अपर्याप्त आय या विचारहीन व्यय के कारण अपने जीवन स्तर को उतना ऊंचा नहीं रख पाता जिससे उसकी शारीरिक एवं मानसिक कुशलता बनी रह सके और वह तथा उसके आश्रित समाज के स्तर के अनुसार जिसका कि वह सदस्य है, जीवन व्यतीत कर सके।"

गोडार्ड के अनुसार, ''निर्धनता उन वस्तुओं का अभाव या अपर्याप्त पूर्ति है जो एक व्यक्ति तथा उसके आश्रितों के स्वास्थ्य तथा कुशलता को बनाएं रखने के लिए आवश्यक है।"

दीवर के अनुसार, ''निर्धनता को रहन–सहन की एक ऐसी दशा के रूप में परिभाषित किया जासकता है। जिसमें स्वास्थ्य एवं शारीरिक कुशलता का अभाव होता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि निर्धनता एक सापेक्षिक अवधारणा है उसका मापदण्ड व्यक्तियों को न्यूनतम जीवन स्तर की सुविधाएँ प्राप्त न हो सकता है। निर्धनता की स्थिति को समझने के लिए व्यक्ति पर आश्रित सदस्यों की संख्या को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। परिवार में सदस्यों की संख्या होने पर कम आय भी व्यक्ति की

अनिवार्स आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है, जबकि अधिक सदस्यों का भरण–पोषण करने के लिए उतनी ही आय निर्धनता की स्थिति उत्पन्न कर सकती है। निर्धनता का सम्बन्ध बाजार भाव से भी है। एक स्थान पर वस्तुओं की कीमत कम होने पर कम आय से भी व्यक्ति की जीविका चल सकती है, लेकिन जिस स्थान पर मंहगाई है, वहां उतनी ही आय से व्यक्ति कठिनता से जीवन निर्वाह कर सकता है इस प्रकार निर्णनता की अवधारणा को समझने के लिए 5 कसौटियों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

1. किसी समाज का सामान्य जीवन स्तर।

2. आय की सीमा जिससे व्यक्ति पर आश्रित सदस्यों में 2,250 कैलोरी मिल सके।

3. परिवार की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति जिसमें, भोजन, कपड़ा और आवास के साथ सुरक्षा और मनोरंजन की सुविधायं भी शामिल हैं।

4. सामाजिक गतिविधियों जैसे– रीति–रिवाजों और उत्सवों में सहभाग कर सकने की सुविधा।

5. जीवन सूचकांक का भौतिक स्तर (PQLI), जैसे औसत आयु, शिशु मृत्सु दर नियन्त्रण और साक्षरता।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वर्तमान युग में निर्धनता की अवधारणा के प्रति एक नये दृष्टिकोण का विकास होने लगा है। गिलिन और गिलिन के द्वारा दी गई परिभाषा से यह भ्रम होता है कि निर्धनता के लिए व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी है, क्योंकि व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक अकुशलता ही उसके जीवन में निर्धनता की समस्या उत्पन्न करती है। इसके विपरीत आज सभी व्यक्ति विद्वान यह स्वीकार करने लगे हैं कि निर्धनता को मनुष्य के दुर्भाग्य अथवा व्यक्तिगत दोषों के आधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता। निर्धनता की सही व्याख्या एक विशेष सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संरचना के सन्दर्भ में ही की जा सकती है इस दृष्टिकोण से यह निष्कर्ष निकलता है कि निर्धनता का तात्पर्य एक ऐसे अभावग्रस्त जीवन से है जो समाज के सामाजिक आर्थिक कुसमायोजन से उत्पन्न होता है तथा जिसके फलस्वरूप व्यक्ति निर्धनता की विभिन्न कसौटी में से एक या अधिक कसौटियों से वंचित रहता है।

उपर्युक्त कसौटियों के आधार पर निर्धनता को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– चरम निर्धनता और तुलनात्मक या सापेक्षिक निर्धनता, चरम निर्धनता का तात्पर्य किसी व्यक्ति के परिवार को जीवन की बुनियादी आवश्यकताएं पूरी करने में असमर्थ रहना है। दूसरे शब्दों में जो व्यक्ति या परिवार भुखमरी, कुपोषण और निरक्षरता के शिकार होते हैं तथा उन्हें आवास, कपड़ा और चिकित्सा सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है, उनकी निर्धनता को चरम निर्धनता कहते हैं। इसका सम्बन्ध देश, काल या जीवन स्तर के मानकों से नहीं होता। तुलनात्मक निर्धनता वह है जिसका निर्धारण किसी विशेष स्थान, समय और जीवन स्तर के मानकों के किया जाता है। विभिन्न समाजों में जीवन स्तर के मानक एक दूसरे से भिन्न होते अनुसार हैं। इस कारण अमेरिका या जापान में जिस स्तर के लोगों को निर्धन माना जाता है, भारत के मानकों के हिसाब से उन्हें निर्धन नहीं कहा जायेगा।

निर्धनता के सामाजिक–आर्थिक एवं राजनैतिक दुष्परिणाम (Social Economic and Political Consequence of Poverty)

एक सामाजिक–आर्थिक समस्या के रूप में निर्धनता के दुष्परिणामों को निम्नांकित रूप से देखा जा सकता है।

1.अपराधों में वृद्धि

2. बाल अपराधों में वृद्धि

3.दुर्व्यसनों में वृद्धि

4.परिवार का विघटन

5. चरित्र का पतन

6. भिक्षावृत्ति को प्रोत्साहन

7. निर्धनता की संस्कृति का विकास

8. आन्दोलन एवं वर्ग संघर्ष

9. राजनैतिक दलबन्दी तथा भ्रष्टाचार

1. आरोपों में वृद्धि (Increase Crimes) :–

निर्धनता से समाज में तरह–तरह के अपराधों में वृद्धि हुई है, साधारणतया कोई व्यक्ति जब ईमानदारी से पर्याप्त साधन प्राप्त नहीं कर पाता तो वह चोरी, डकैती, हत्या, जेबकटी आदि के द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता है। अपने भूख से तड़पते बच्चे तथा असहाय पत्नी को देखकर उसका मन कांप उठता है, ऐसी स्थिति में अच्छे से अच्छा व्यक्ति भी इन समाज–विरोधी कार्यों की ओर प्रवृत्त हो सकता है, निर्धनता मानसिक तनाव को बढ़ाती है जिससे कि व्यक्ति में अपराधिक भावना पैदा होती है ।

2. बाल अपराधों में वृद्धि (Increase in Child Crimes) :–

निर्धन परिवारों में माता–पिता अपने बच्चों की प्रमुख आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते। साधारणतः ऐसे बच्चे शिक्षा और स्वस्थ मनोरंजन से वंचित रह जाते हैं। अक्सर निर्धन परिवारों में बच्चों से कम आयु में ही नौकरी करवाई जाने लगती है। इसके फलस्वरूप बच्चे आरम्भ से ही अनुशासनहीन हो जाते हैं। उनकी संगति बिगड़ जाती है और इस प्रकार उन्हें अपराधी कार्य करने का प्रोसहन मिलता है। एक बार अपराधियों के गिरोह में फंस जाने के बाद ऐसे बच्चे कठिनता से उस वातावरण से बाहर निकल पाते हैं।

3. दुर्व्यसनों में वृद्धि रू निर्धनता की समस्या ने व्यक्ति में अनेक प्रकार के दुर्व्यसन उत्पन्न किए हैं निर्धनता के कारण व्यक्ति जब अनेक प्रकार के तनावों और चिंताओं में फस जाता है तो वह अक्सर मद्यपान करने लगता है। बहुत से व्यक्ति जुंआ खेलना प्रारम्भ कर देते हैं

अथवा सट्टा लगाने लगते हैं जिससे वे जल्दी ही अधिक धन प्राप्त कर सकें, यद्यपि ऐसे लोभ से उनकी स्थिति पहले से अधिक दयनीय हो जाती है। निर्धनता से उत्पन्न तनाव वेश्यावृत्ति को भी प्रोत्साहित करते हैं क्योंकि इन तनावों के कारण व्यक्ति उचित एवं अनुचित का ध्यान ही नहीं रख पाता।

4. परिवार का विघटन :–

निर्धनता का एक बड़ा दुष्परिणाम परिवारों का विघटन होता है निर्धनता की स्थिति में परिवार के सभी सदस्य एक–दूसरे पर अविश्वास करने लगते हैं, घर में कलह का वातावरण बना रहता है और कभी–कभी परिवार अनैतिकता का भी केन्द्र बन जाता है। ऐसी स्थिति में सदस्यों में पारस्परिक प्रेम समाप्त हो जाता है और सभी लोग अपने–अपने स्वार्थों को पूरा करने में लग जाते हैं। परिवार में निर्धनता के कारण परिवार में पति–पत्नी के बीच विवाह विच्छेद हो जाने की सम्भावना बढ़ जाती है।

5. चरित्र का पतन :–

निर्धनता चरित्र को गिराने वाला सबसे प्रमुख कारण है, निर्धनता के कारण जब परिवार की आवश्यकताएं पूरी नहीं हो पाती तो साधारणतया स्त्रियों को भी जीविका की खोज में घर से बाहर निकलना पड़ता है। बहुत से व्यक्ति उनकी असमर्थता का लाभ उठाकर अथवा उन्हें तरह–तरह प्रलोभन देकर अनैतिक कार्यों में लगा देते हैं। इस प्रकार से समाज में वेश्यावृत्ति को अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिलता है। वेश्यावृत्ति में लगी अधिकांश स्त्रियां भी आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह व्यवसाय आरम्भ करती है।

6. भिक्षावृत्ति को प्रोत्साहन :–

भिक्षावृत्ति निर्धनता का एक गम्भीर दुष्परिणाम है। कोई व्यक्ति जब किसी साधन से जीविका उपार्जित करने में असफल हो जाता है तो उसके सामने भीख मांगने के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं रह जाता। अक्सर ऐसे परिवारों में बच्चों को भीख मांगने के लिए बाह्य किया जाता है। एक बार यदि एकव्यक्ति भीख मांगने लगता है, वह भविष्य में भी कोई दूसरा कार्य करने योग्य नहीं रह जाता। इस प्रकार उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही विघटित हो जाता है।

7. निर्धनता की संस्कृति का विकास :–

आधुनिक समाजशास्त्रियों का मानना है कि निर्धनता का सबसे बड़ा दुष्परिणाम निर्धन समाज में निर्धनता की संस्कृति (Culture of poverty) का विकसित हो जाना है, यह एक विशेष संस्कृति है जिसमें व्यक्ति अपने आप को अभाव कीदशा में रहने के अनुकूल बना लेता है । आस्कर लेविस (Oskar Lewis) ने मैक्सिको के अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष दिया कि निर्धनता की संस्कृति में व्यक्ति केवल वर्तमान के बारे में ही सोचने लगता है, वह भाग्यवादी हो जाता है, उसमें हीनता की भावना प्रबल बन जाती है तथा बच्चों को भी इन दशाओं में रहने का प्रशिक्षण दिया जाने लगता है, सामाजिक और राजनैतिक गतिविधियों में इस संस्कृति के लोगों का कोई सहभाग नहीं होता। फलस्वरूप निर्धनता की समस्या एक स्थाई रूप ले लेती है।

8. आन्दोलन एवं वर्ग संघर्ष :–

निर्धनता का एक बड़ा दुष्परिणाम समाज में बढ़ते हुए आन्दोलन एवं वर्ग–संघर्ष है। निर्धनता के कारण अधिकांश आन्दोलन किसानों, मजदूरों और जनजातियों द्वारा ही चलाए जाते हैं। भारत में नक्सलवादी आन्दोलन वर्ग– संघर्ष का परिणाम है। जिसने आज हिंसक रूप ले लिया है।

9. राजनीतिक दलबन्दी तथा भ्रष्टाचार :–

निर्धनता का एक बड़ा दुष्परिणाम भ्रष्टाचार है आज समाज में देश में भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा हैजिसका प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष स्प से प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ता है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि गरीबी के कारण ही भ्रष्टाचार है। जिस कारण से शासन द्वारा चलाई जा रही योजनाओं का (सरकार द्वारा गरीबी उन्मूलन योजनाएं) जनता को लाभ ही नहीं मिल पा रहा है।

निष्कर्ष (Conclusion) – उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि निर्धनता की समस्या अत्यंत गम्भीर है आज निर्धनता के दुष्परिणाम प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिल रहा है, चाहे वह सामाजिक क्षेत्र आर्थिक क्षेत्र या फिर राजनैतिक क्षेत्र हो।

इन्हीं दुष्परिणामों को देखते हुए आज सरकार अनेक प्रयत्नों द्वारा स्थितियों में सुधार लाना चाहती है अर्थात सुधार लाने का प्रयत्न कर रही है, वास्तविकतायह है कि वर्तमान पंचवर्षीय योजनाओं तथा सभी दूसरे विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना और आर्थिक विषमताओं को दूर करके देशवासियों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना है।

निर्धनता को दूर करने के लिए सरकार द्वारा किए जाने वाले प्रयास :–

1. कृषि का विकास
2. रोजगार की सुविधायें
3. परिवार नियोजन को प्रोत्साहन
4. ग्रामीण रोजगार
5. बड़े उद्योगों का विकास
6. लघु उद्योगों का विकास
7. पोषण की सुविधाएं
8. संशोधित 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम
9. अन्त्योदय योजना
10. काम के बदले आनाज योजना

11. रोजगार आश्वासन योजन

12. राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम।

इन सभी प्रयास जो कि सरकार द्वारा चलाए जा रहे हैं इन सभी का उद्देश्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना तथा सामाजिक असमान्यताओं को दूर करने से है।

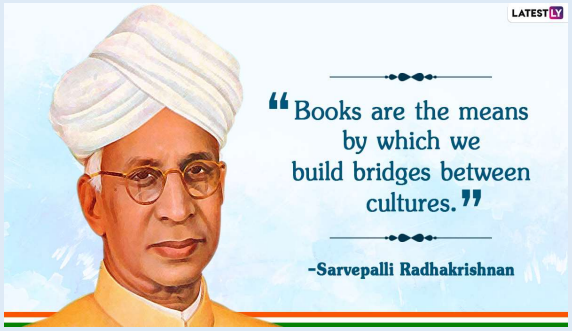

Center for Distance Learning & Continuing Education
MAHATMA GANDHI CHITRAKOOT GRAMODAYA VISHWAVIDYALAYA
Chitrakoot, Satna (M.P.) 485334
E-mail : directordistancemgcgv@gmail.com